ब्रह्मचर्य गौरव

भाग - 2

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

॥ ओ३म् ॥

ब्रह्मचर्य गौरव

लेखक :-

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

सम्पादक :-

आचार्य सत्यसिन्धु

प्रकाशक :

वैदिक साहित्य प्रतिष्ठान

सहयोग राशि—रामदेव धींगड़ा पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट, पानीपत

प्रकाशक : **वैदिक साहित्य प्रतिष्ठान**
गणेशदास गरिमा गोयल, २७०४, प्रेममणि- निवास,
नया बाजार दिल्ली-६
चलभाष : ०९८९९७५९००२

संस्करण : सन् २०१३

मूल्य : २५.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. माता तुलसा देवी, हुकुमचन्द्र धर्मार्थ आर्य साहित्य प्रकाशन, लाला लाजपत राय चौक, आर्यसमाज, नागोरी गेट, हिसार (हरि०)

२. आनन्द मुनि,
चलभाष : ०९०३४४४४८९८

३. आर्ष गुरुकुल, नर्मदापुरम्, जिला-होशंगाबाद (म०प्र०)

४. आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, झज्जर, जिला-झज्जर (हरि०)

लेजर टाईपसेटिंग : आर्य लेजर प्रिंट्स, हिण्डौन सिटी, राजस्थान

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश के लेखक

(विक्रमसंवत् १८८१-१९४०)

समर्पण

आर्यावर्त की धरती पर अठासी हजार उर्ध्वरेता ऋषि नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो चुके हैं इस ब्रह्मचर्य की परम्परा का अनुशरण आर्य-समाज के संस्थापक युगद्रष्टा महर्षि दयानन्द ने पालन किया। ऋषि के पश्चात् ब्रह्मचारी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी, स्वामी आत्मानन्दजी सरस्वती, स्वामी वेदानन्द तीर्थ, स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी, स्वामी सर्वानन्द सरस्वती, ब्रह्मचारी अखिलानन्दजी झरिया बिहार समस्त गुरुकुलों के आचार्य जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, उन्हीं आचार्य के चरणों में यह लघुपुस्तिका ब्रह्मचर्य गौरव सादर समर्पित है।

—आचार्य ब्र० नन्दकिशोर
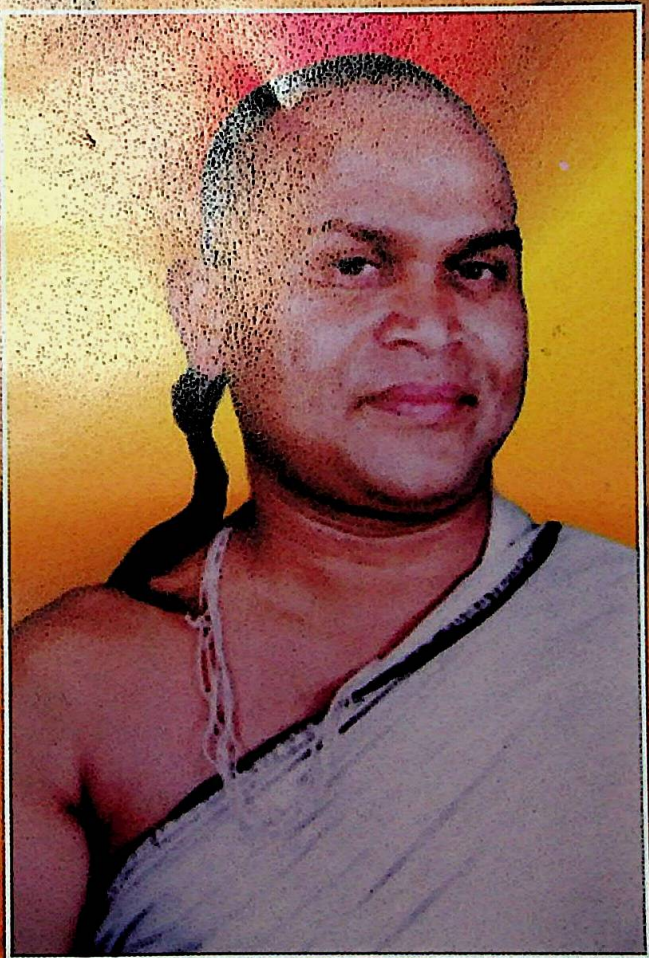
आचार्य ब्र० नन्दकिशोर
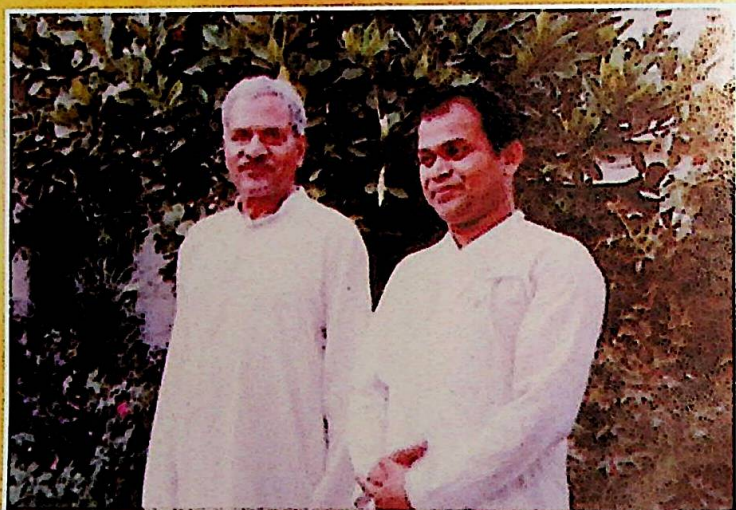
आचार्य रामनाथ वेदालंकार के साथ ब्र० नन्दकिशोर
वेद मन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

ब्र० हसंराज आर्य
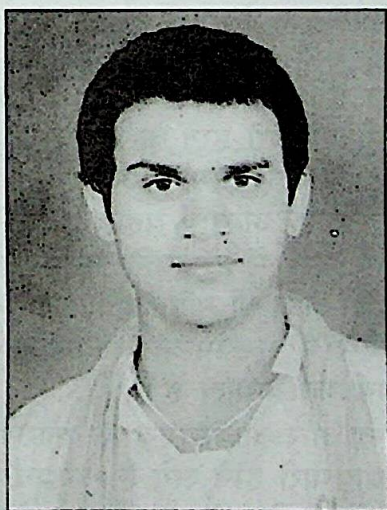
ब्र० नन्दकिशोर

प्राक्कथन

सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही आज़ पर्यन्त तक ब्रह्मचर्य का महत्त्व रहा है। मेरा मानना है कि इस संसार में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यस्थ आश्रम चारों का सन्तुलन समकक्ष है। इन चारों आश्रमों में ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य के बिना चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता और न ही राज्य को चला सकते हैं। आर्यावर्त देश में अठासी हजार ऋषि-महर्षि, उर्ध्वरेता, नैष्ठिक, ब्रह्मचारी हो चुके हैं, रामायणकाल में वीर हनुमान् ब्रह्मचारी थे, महाभारत काल में भीष्म पितामह ब्रह्मचारी थे, आज के युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती ब्रह्मचारी रहे हैं। महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज के गुरुकुलों से हजारों ब्रह्मचारी हुए हैं, जो देश का अच्छा नेतृत्व देकर मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य का महत्त्वपूर्ण शिक्षण आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं में ही प्रशिक्षण दिया जाता है, उदाहरण के रूप में गुरुकुल, कन्या गुरुकुल, आर्यवीर दल बहुत कार्य कर रहे हैं। अथर्ववेद के मन्त्रों में राजा को ब्रह्मचारी कहा है। शिक्षा के क्षेत्र में आचार्य को ब्रह्मचारी दर्शाया है। आचार्य ब्रह्मचारी होने के कारण ब्रह्मचारी को चाहता है। राजा और आचार्य राष्ट्र निर्माता और भाग्य विधाता है। राजा प्रजा पर शासन करता है, आचार्य ब्रह्मचारी को ज्ञान प्रदान करता है। हमारे भारतवर्ष देश में राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री ब्रह्मचारी होकर शासन किये हैं। आज भी महिलाएँ पश्चिम बंगाल, तमिलनाडू, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश में मुख्यमन्त्री बनकर राज्य को चला रही हैं, ये सब ब्रह्मचर्य का कमाल है।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के कारण मत-मतान्तरों में भी बहुत से वर्ग ब्रह्मचारी होने लगे हैं। ब्रह्मचर्य के बल पर देश और विभिन्न विभागों में लोग सेवारत हैं। ब्रह्मचर्य का आनन्द कुछ और ही है, रहकर देखो, पता चलेगा। सदैव स्वस्थ रहोगे; ब्रह्मचर्य के मतवाला को सब कुछ, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य ही दिखाई देता है। जलचर, नभचर में सर्वत्र ब्रह्मचर्य दिखाई देता है

उसके सामने पक्षी भी ब्रह्मचारी है, घास खाने वाला बैल सांड भी ब्रह्मचारी है, समस्त वैदिक साहित्य ब्रह्मचर्य के गुणगान से भरा पड़ा है। १९८५ से ही ब्रह्मचर्य पर पुस्तक लिखना चाहता था। दो-दो पृष्ठ लिखकर वेद मन्दिर ज्वालापुर एवं गुरुकुल होशंगाबाद के पुस्तकालय में लिखकर छोड़ देता था। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में व्यस्तता के कारण ब्रह्मचर्य पर पुस्तक न लिख पाया। इस बार ब्रह्मचर्य गौरव पुस्तक लिखकर मेरी इच्छा पूर्ण हुई। इस पुस्तक को सुचारु रूप से तैयार करने में विभिन्न पुस्तकें सहायक रही, ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, आरोग्यप्रकाश, सत्यार्थ-प्रकाश, संस्कार विधि, पुरुषार्थप्रकाश, ब्रह्मचर्य के साधन, ब्रह्मचर्य विज्ञान, बाल जीवन सोपान, वैदिक ब्रह्मचर्य गीत, वैदिक उपदेश माला, उपनयन सर्वस्व, सौ वर्ष जीने की कला, वैदिक वीर गर्जना, अष्टाङ्ग हृदय, ब्रह्मचर्य सन्देश, आध्यात्मिक पथ, स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार, वेद स्वाध्याय इत्यादि। मैं उपकृत हूँ मेरठ निवासी आर्यमुनि का जिन्होंने प्रूफ संशोधन में सहयोग किये हैं। गुरुकुल के ब्रह्मचारी स्कूल के छात्रों के लिये यह रोचक प्रेरणा देने वाली, लाभकारी पुस्तक बनाई गयी है, आशा है यह ब्रह्मचर्य गौरव पुस्तक आप के जीवन को ऊँचा उठायेगी, संजीवनी का कार्य करेगी।

मंगल कामनाओं के साथ

—आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

कल्पतरु आश्रम, नेपाली फार्म

पो०-सत्यनारायण मन्दिर

जि०-देहरादून उत्तराखण्ड (भारत)

विषय-सूची

अथ ब्रह्मचर्य जिज्ञासा

१. ब्रह्म एव हतो हन्ति ब्रह्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्ब्रह्मो न हन्तव्यो मा नो ब्रह्मो हतोऽवधीत्॥

अर्थ—हमने ब्रह्म–वेद–ब्रह्मचर्य को नष्ट कर दिया तो ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मचर्य भी हमें नष्ट कर देगा। और यदि हम ब्रह्म की अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे तो वह भी हमारी रक्षा करेगा। अतः ब्रह्मचर्य की रक्षा अपने प्राणों से बढ़कर करनी चाहिये।

ब्रह्मचर्य जीवन संजीवन बूटी

२. हन्ताहं पृथिवीमिमां निर्दधानीह वेह वा।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥

—ऋ० १०।११९।९

प्रश्न (१)—अरे भाई ब्रह्मचारी! क्या बात है कि तुम ठहाका मारकर हँस रहे हो?

उत्तर—मत पूछो मेरी मस्ती का ठिकाना—यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो! मैंने "ब्रह्मचर्य संजीवन बूटी" सोमरस का पान कर लिया इसलिए जी चाहता है कि इस पृथ्वी को उठाकर यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ रख दूँ।

३. यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत॥

—कठ० बल्ली २ श्लोक १५

वैदिक ब्रह्मचर्य स्तवन

१. इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
—ऋ० १०।११९।१

अर्थ—मुझे ईश्वर की भक्ति में इतना आनन्द आया कि मैं गाय, घोड़े और सारी सम्पदा को दान कर दूँ और ईश्वर भक्ति में ही लगा रहूँ। क्योंकि मैंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीरता के रस का पान कर लिया है।

२. प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
—ऋ० १०।११९।२

अर्थ—बहुत समय तक ध्यान साधना करने से मेरी प्राणशक्ति का उत्थान हो गया है और शरीर में कम्पन आदि क्रियाएँ प्रारम्भ हो गई है और मेरे प्राण उर्ध्वगति को प्राप्त हो रहे हैं। क्योंकि मैंने ब्रह्मचर्य, अर्थात् वीरता के रस का सोमपान कर लिया है।

३. नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
—ऋ० १०।११९।६

अर्थ—मैंने सोमरस का, अर्थात् ब्रह्मचर्य के अमृतरस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है। मुझमें वह शक्ति आ गयी है कि संसार का कोई मनुष्य मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

४. नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
—ऋ० १०।११९।७

अर्थ—मैं तो इतना महान् हो गया हूँ कि ये विशाल द्यावापृथिवी मेरे एक पासे के बराबर भी नहीं हैं। मैंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

५. अभि द्यां महिना भुवमभीइमां पृथिवीं महीम्।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥
—ऋ० १०।११९।८

अर्थ—निःसन्देह यह आकाश बड़ा महिमाशाली है, पर अपनी महत्ता से मैंने इसे भी पीछे छोड़ दिया है। निःसन्देह यह पृथिवी बड़ी विशाल है, पर अपनी विशालता से मैंने इसे भी परास्त कर दिया। मैंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

६. **हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा।**
कुवित्सोमस्यापामिति ॥

—ऋ० १०।११९।९

अर्थ—अरे, मैंने सोमरस ब्रह्मचर्य शक्ति का धारण कर लिया है, अर्थात् पान कर लिया है। कहो तो इस पृथिवी तक को उठाकर यहाँ रख दूँ, वहाँ रख दूँ, जहाँ कहो वहीं रख दूँ, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

७. **ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा।**
कुवित्सोमस्यापामिति ॥

—ऋ० १०।११९।१०

अर्थ—मैं पृथिवी को दग्ध करने वाले इस विशाल सूर्य तक को छोटी-सी फुटबाल की तरह एक ठोकर से जहाँ कहो वहीं पहुँचा दूँ। मैंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

८. **अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।**
कुवित्सोमस्यापामिति ॥

—ऋ० १०।११९।१२

अर्थ—अरे, मैं तो आकाश में उदित साक्षात् महातेजस्वी सूर्य हो गया हूँ। मैंने ब्रह्मचर्य अर्थात् वीरता के रस का पान कर लिया है, वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत-बहुत पान कर लिया है।

मैं

ब्रह्मचारी हूँ ब्रह्मचारी हूँ ब्रह्मचारी हूँ।

या यूँ भी कह सकते हैं—

मैं

ब्रह्मचारिणी हूँ, ब्रह्मचारिणी हूँ, ब्रह्मचारिणी हूँ।

ब्रह्मचर्य की महिमा

वैदिक शास्त्रों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में, मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, व्याकरण महाभाष्य, आयुर्वेद चरक संहिता, अष्टाङ्गयोग, योग दर्शन, उपनिषदों और चाणक्य सूत्र इत्यादि ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य की महिमा व गरिमा पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। ब्रह्मचर्य का गुणगान, अर्थात् ब्रह्मचर्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है। उपरोक्त ग्रन्थों में बहुत कुछ कहा गया है।

(१) ब्रह्मचर्य शब्द की निरुक्त द्वारा व्याख्या—

ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ यह है कि, **"ब्रह्मणे वेदादिविद्यायै चर्यते इति ब्रह्मचर्यम्"** ब्रह्म नाम वेद विद्या का है। वेदादि विद्याओं के लिये जो व्रत धारण किया जाता है उसको ब्रह्मचर्य कहते हैं। और ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं। जैसे "ब्रह्मणि चरितुं शीलमस्यास्तीति ब्रह्मचारी" अथवा "ब्रह्म वेदस्तदध्ययनार्थं तद् व्रतं तदपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी" ब्रह्म (वेदविद्या) को प्राप्त करने का शील जिसमें हो, वह ब्रह्मचारी कहाता है। अथवा ब्रह्म वेदविद्या के पढ़ने के अर्थ जो जितेन्द्रियादि व्रत हैं उसको भी ब्रह्म कहते हैं। उस ब्रह्म, अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं।

ब्रह्म का अर्थ है परमात्मा और वेद। वेद ज्ञान को कहते हैं। विद्यार्थी जीवन में ज्ञान के लिये चर्य, अर्थात् आचरण करने योग्य अनुष्ठान ब्रह्मचर्य है। ज्ञानार्थ आचरण करने वाला बालक ब्रह्मचारी कहलाता है।

ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ—

ब्रह्मचारी वह है जो अहर्निश ब्रह्म की चर्या में संलग्न है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-सूक्त के प्रथम मन्त्र में ही ब्रह्मचारी की परिभाषा कर दी गई है कि जो ब्रह्म को चाहता हुआ उसकी प्राप्ति के लिए द्यावा-पृथिवी में विचरणशील है, वह ब्रह्मचारी है—ब्रह्म

इष्णन् चरति इति ब्रह्मचारी। मन्त्र इस प्रकार है—**"ब्रह्मचारी इष्णाश्चरति रोदसी उभे।"** इस मन्त्र पर सायण का भाष्य भी द्रष्टव्य है—**"वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुं शीलम् यस्य स ब्रह्मचारी"**—ब्रह्म, अर्थात् वेदात्मक अध्ययन में गति करने का जिसे स्वभाव है वह ब्रह्मचारी है। अतः स्पष्ट हो गया कि ब्रह्म का अर्थ वेद है, उसकी चर्या है ब्रह्मचर्या। भगवान् वेद व्यास ने 'ब्रह्म' वेद के दो अर्थ किए हैं, पहला **शब्दब्रह्म** और दूसरा **परब्रह्म**। शब्द-ब्रह्म का अर्थ है **वेद** और पर-ब्रह्म का अर्थ है, परात्पर सत्ता—**ईश्वर**। परिणामतः ब्रह्मचारी वह है जो वेदाध्ययन और ईशचिन्तन में निरत रहता हो। ब्रह्मचारी के लिए सर्वप्रथम शब्दब्रह्म में निष्णात होना आवश्यक है, फिर परब्रह्म के चिन्तन में संलग्न रहना। शब्दब्रह्म में निष्णात हुए बिना वह परब्रह्म को नहीं पा सकता। भगवान् व्यास का यह वचन स्मरणीय है—**"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।"** अब स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मचारी किस ब्रह्म की चाहना से विचरणशील है—प्रथम वेद, दूसरे ईश्वर। यदि कन्या को ब्रह्मचारी रहना है तो उसे ब्रह्म की चर्या करनी होगी। चर्या-मात्र ही नहीं करनी होगी, अपितु उसमें निष्णात होना होगा। वेदब्रह्म में निष्णात हुए बिना परब्रह्म की प्राप्ति असम्भव है। परिणामतः कन्याओं को ब्रह्मचारी रहना उन्हें वेदाधिकार और ईश्वराधिकार प्रदान करता है और वेदाधिकार व ईश्वराधिकार उसके विधायक चिह्न ब्रह्मसूत्र का अधिकार भी प्रदान करता है, अतः कन्याओं को यज्ञोपवीताधिकार स्वतः सिद्ध है।

प्रश्न—ब्रह्मचारी किसको कहते हैं?

उत्तर—जो जितेन्द्रिय होके ब्रह्म, अर्थात् वेदविद्या के लिए आचार्यकुल में जाकर विद्या-ग्रहण के लिए प्रयत्न करे, वह ब्रह्मचारी कहाता है। —व्यवहारभानु से उद्धृत

विविध ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य का लक्षण व महत्त्व

ब्रह्मचर्य और महामृत्युञ्जय

अथर्ववेद में कहा है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

—अथर्व० ११।५।१९

देव लोग ब्रह्मचर्य के प्रताप से मृत्यु को मार भगाते हैं। इन्द्र भी ब्रह्मचर्य के तप से ही देवताओं पर शासन करता है और ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवताओं को सुख देता है।

ब्रह्मचर्य से उभय लोक के सुखों की सिद्धि होती है, उसी को अब दर्शाते हैं। क्योंकि सब सुखों की सिद्धि का हेतु जीवन है और जीवन का मुख्य हेतु प्राणों की रक्षा और प्राणों की रक्षा का मुख्य साधन वेदादि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य ही कहा है।

तद्यथा—

पृथक्सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्॥

—अथर्व० ११।५।२२

जगत् पिता परमात्मा की प्रजा मनुष्यादि सब जीव पृथक्-पृथक् अपने-अपने आत्मा में प्राण को धारण व पोषण करते हैं, उन सब जीवों के प्राणों की रक्षा ब्रह्मचारी में धारण किया हुआ जो ब्रह्मचर्य व्रत है, वही करता है, अर्थात् सब जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाला मुख्य ब्रह्मचर्य व्रत है, इसी प्रकार दुःख की निवृत्ति भी ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने से ही होती है। जैसे—

ब्रह्मचारी न काञ्चनार्त्तिमार्च्छति।

—शत० कां० ११ प्र० ३ ब्रा० ६ कं० २

ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने से किसी प्रकार का दुःख प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार से पुण्य, शरीरारोग्यतादिक का कारण भी ब्रह्मचर्य ही है। जैसे—

पुण्यतममायुः प्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनं ऊर्जस्करममृतं शिवं शरणयमुदात्तं मत्तः श्रोतुमर्हथोपधारयितुम् प्रकाशयितुञ्च प्रजानुग्रहार्थमार्षं ब्रह्मचर्य्यम्।

—चर० चि० अ० १ रसायनपाद ४।१६५

भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम आदि महर्षियों से इन्द्र ने कहा कि हे तपोवन ऋषियो! सब मनुष्यों के लिए मुख्य पुण्यतम, अर्थात् सर्व पुण्यों से उत्तम पुण्य ब्रह्मचर्य है; और पूर्ण आयु (उमर) का करने वाला, शीघ्र वृद्धावस्था को न आने देने वाला, कल्याण का करने वाला, शरीरादि की रक्षा करने वाला, और मन को सर्वदा आनन्द में रखने वाला, जो ब्रह्मचर्य है, उसको तुम मुझसे सुनो, और धारण करो, इस सनातन ब्रह्मचर्य को प्रजा के सुख के लिये संसार में प्रचार करो, इसी प्रकार अष्टाङ्गहृदय में लिखा है कि—

आहारशयनब्रह्मचर्य्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः शरीरं धार्य्यते नित्यमागारमिव धारणैः॥५७॥ —अष्टाङ्गहृदय सूत्र स्थान अ० ७

आहार निद्रा के सहित ब्रह्मचर्य ही शरीर का आधार है, जैसे घर के आधार खम्भे (थंभे) होते हैं। अहह! जिस समय में इस आर्यावर्त्त देशरूप गृह में ब्रह्मचर्य का खम्भा लगा हुआ था, उस समय में यह देश सब प्रकार से उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था, परन्तु जब से इस भारतवर्ष देश का ब्रह्मचर्यरूप खम्भा टूटा, तभी से यह देश गिरकर नष्ट-भ्रष्ट हो गया। वृद्ध गौतम स्मृति में लिखा है कि—

आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः।
पुण्यं च मत्प्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्य्यया॥

—वृद्धगौ० स्मृ० अ० ४

आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री (शोभा), सौन्दर्य, धन, महायश, पुण्य और प्रीति, इन सबको अब्रह्मचर्य नाश कर देता है, अर्थात् ब्रह्मचर्य न रखने से, इन पदार्थों का नाश हो जाता है।

वास्तव में ब्रह्मचर्य व्रत का परित्याग करने से इस देश की अकथनीय दुर्दशा हो रही है, और जब तक एतद्देश निवासी लोक ब्रह्मचर्य व्रत को पुनः धारण न करेंगे, तब तक इस देश की उन्नति होनी सर्वथा असम्भव है।

इसीलिये महाभारत का उद्धरण देते हुए महर्षि दयानन्दजी व्यवहारभानु नामक पुस्तक में ब्रह्मचर्य का गुणगान करते हुए कहते हैं—

(उ०) ब्रह्मचर्यस्य च गुणं शृणु त्वं वसुधाधिप!
आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ॥ १ ॥
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप!
बह्व्यः कोट्यस्त्वृषीणां च ब्रह्मलोके वसन्त्युत ॥ २ ॥
सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्!
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ॥ ३ ॥

भीष्मजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि—हे राजन्! तू ब्रह्मचर्य के गुण सुन। जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेके मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी होता है ॥ १ ॥ उसको कोई शुभगुण अप्राप्त नहीं रहता ऐसा तू जान कि जिसके प्रताप से अनेक कोटि ऋषि ब्रह्मलोक अर्थात् सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जो निरन्तर सत्य में रमण, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा, उत्कृष्ट, शुभगुण स्वभावयुक्त और रोगरहित पराक्रमसहित शरीर, ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदादि सत्यशास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यास कर्म्मादि करते हैं उनके वे सब उत्तम गुण बुरे काम और दुःखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति करानेहारे होते हैं और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं ॥ ३ ॥

पुनः महाभारत में कहते हैं—

ब्रह्मचर्यं परं तीर्थम्। —आश्व० पर्व० ९२

ब्रह्मचर्य का पालन करना परम तीर्थ है।

ब्रह्मचर्य जीवितम्। —महा० अनु० ५७।१०

ब्रह्मचर्य से जीवन (दीर्घ जीवन प्राप्त होता है)।

प्राचीनकाल में ऋषि महर्षि व राजा, महाराजा, ब्रह्मचर्य को

ही परम धर्म मानते थे, और पूर्ण ब्रह्मचर्य को धारण करके शत्रुओं का पराजय करते थे। जैसे—

ब्रह्मचर्य्यं परो धर्म्मः स चापि नियतस्त्वयि।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मिन् विजितस्त्वया॥ ७१॥

—भा० आदि० अ० १७०

अर्जुन ने युद्ध करके गन्धर्व को हरा दिया; तब गन्धर्व बोला कि हे अर्जुन! यह ब्रह्मचर्य ही परम धर्म है, क्योंकि इसी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से तूने मुझे जीत लिया। प्रिय पाठकगण! विचार कीजिए कि शत्रुओं को पराजय करने के लिये ब्रह्मचर्य कितना आवश्यक है। इतना ही नहीं, किन्तु जैसे—

वैखानसा वालखिल्यास्तथा चान्ये तपोधनाः।
रसायनमिदं प्राश्यं बभूवुरमितायुषः॥ ५१॥
ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्य्यं चेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः।
रसायनमिदं ब्राह्ममायुष्कामः प्रयोजयेत्॥ ५३॥

—चर० चि० अ० १ पाद० १

वैखानस नाम वानप्रस्थ तपस्वी, और बालखिल्य नाम मुनिजन, तथा अन्यान्य ऋषि महर्षि आदि तपोधन महात्मा, निश्चयपूर्वक ब्रह्मचर्यरूप रसायन को सेवन करके दीर्घजीवी हुए। ऐसे ही चरकाचार्य सर्व मनुष्यों को उपदेश करते हैं कि, जो अपनी आयु को बढ़ाना चाहे, वह ब्रह्मचर्यरूप रसायन को धारण करे, इसी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने से वे महर्षि जन—

वीततन्द्रा क्लमाश्चासन्निरातङ्काः समाहिताः।
मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रं तपोधनाः॥ ५२॥

—चर० चि० अ० १ पा० १

तन्द्रा [नाम कुछ सोना कुछ जागना ऐसी हालत (दशा) जैसी कि अफीमी लोगों की होती है] को जीतते थे, पापाचरण व निरान्तक अर्थात् रोग दुःख सन्देहादिकों से सर्वथा रहित होते थे, और समाहित अर्थात् समाधिस्थ शुद्धान्तःकरण पुरुषार्थी बुद्धिमान्, स्मृतिमान् और बलवान् होते थे। अतः—

कामाश्चेष्टान् समश्नुते॥ ५४॥ —चर० चि० अ० १ पा० १

जो पुरुष क्रियाकुशलता को तथा नाना प्रकार के सुखों को

भोगना चाहें, वह ब्रह्मचर्य का सेवन करें। इसी प्रकार धर्म यज्ञादि की कामना जिसको हो, उसको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्य धारण करे क्योंकि—

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्य्यमेकान्तं निर्मलम्॥ ४॥

—अष्टां० उत्तरस्थाने अ० ४०

जगत् में धर्म का हितकारक, यश का करने वाला, आयु का बढ़ाने वाला, और दोनों लोकों को सुधारने वाला मुख्य ब्रह्मचर्य ही है। इसलिए अष्टाङ्गहृदयकार वाग्भट्ट कहते हैं कि इस निर्मल, ब्रह्मचर्य सेवन करने को हम भी अनुमोदन करते हैं। अवश्यमेव इस निर्मल ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिये। और इस बात को सब मनुष्य स्वीकार करते हैं कि जितने सांसारिक सुख हैं, वे सब आयु के आधीन हैं। और—

ब्रह्मचर्य्यमायुष्यकराणाम्॥ ३३॥ —च० सू० अ० २५

आयु के हितकारक जितने पदार्थ हैं, उन सब में श्रेष्ठतम ब्रह्मचर्य है, और जो पूर्वकाल के ऋषि, मुनि, ज्ञानी गुणी तथा पराक्रमी होकर, उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए थे, इसका यही कारण था कि, वे महात्मा, आज कल के अनेक मूर्ख माता-पिता के सदृश स्वसन्तानों को, बालविवाहादि की कुशिक्षा नहीं देते थे, किन्तु वे तत्वज्ञ अपनी सन्तानों को अत्युत्तम ब्रह्मचर्य सेवन कराके, पराक्रमी, विद्वान्, और योग्य बनाते थे, उन ऋषियों के कुल की ऐसी मर्यादा थी कि वे अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य सेवन कराने के बिना रख ही नहीं सकते थे, क्योंकि वे महात्मा अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य पालन कराना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य कर्म समझते थे। निम्नलिखित कालपर्यन्त अपने सन्तान को, ब्रह्मचर्य पालन न कराने से, कुल को कलंकित करना, और सन्तानों का वर्णसंकर होना मानते थे। देखो—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्य्यं न वै सोम्याऽस्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति॥

—छां० प्र० ६ खं० १

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश करते हैं कि,

हे श्वेतकेतु! तू ब्रह्मचर्य को धारण कर, क्योंकि ब्रह्मचर्य के सेवन न करने से, मनुष्य वर्णसंकर हो जाता है, और हमारे कुल में आज दिन तक कोई भी ऐसा नहीं हुआ कि, जिसने ब्रह्मचर्य व्रत पालन न किया हो, इसलिए तू ब्रह्मचर्य को धारण कर। इसी प्रकार प्राचीन ऋषि-महर्षि यज्ञ और इष्ट इत्यादिक भी ब्रह्मचर्य को ही मानते थे जैसे—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षेत ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनु विन्दते॥ १॥

अथ यत्सूत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येवात्मानमनुविद्यमनुते॥ २॥

—छां० प्र० ८ खं० ५

ब्रह्मचर्य को ही यज्ञ कहते हैं, इस ब्रह्मचर्य के सेवन से ही जो सबका ज्ञाता परमेश्वर है, उसको जानकर, उस परमेश्वर को प्राप्त होता है, और जिसको इष्ट अर्थात् सर्व सुख का साधन कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। इस ब्रह्मचर्य से ही विद्या बुद्धि आदि उत्तम गुणों को प्राप्त होता है॥ १॥

और इस ब्रह्मचर्य से ही, अपने आत्मा का यथावत् रक्षण भी होता है, और इस ब्रह्मचर्य से ही मननशील होकर परमात्मा का ध्यान भी कर सकता है॥ २॥

जिस ब्रह्मचर्य का सत्शास्त्रों में ऐसा महात्म्य लिखा है, उस ब्रह्मचर्य के स्वरूप का यहाँ पर कथन करते हैं।

तदाहुर्न ब्राह्मणं ब्रह्मचर्य्यमुपनीय मिथुनं चरेद् गर्भो वा एष भवति ब्रह्मचर्य्यमुपैति॥ —श० कां० ११ प्र० ३ ब्रा० ६ कं० १६

ब्रह्मचारी को चाहिये कि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके, मैथुन कदापि न करे। जैसे लड़का जब गर्भ में रहता है, तब वह कुछ भी कुचेष्टा नहीं करता, ऐसे ही ब्रह्मचर्य भी विद्या, बल, बुद्धि, वीर्य, पराक्रमादि का गर्भ है। जैसे गर्भ में बालक का शरीरादि बढ़ता है, ऐसे ही, बल, बुद्धि, विद्या, वीर्य, पराक्रम के सहित ब्रह्मचर्यावस्था में भी ब्रह्मचारी बढ़ता है, इसलिए जब तक ब्रह्मचर्य व्रत रक्खे तब तक मैथुन न करे, इससे यह बात सिद्ध हुई कि,

विद्याभ्यासादि के लिये वीर्यादि के रक्षण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं जैसे योगशास्त्र में लिखा है कि—

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥ —योग० पाद २ सू० ३८

ब्रह्मचर्य के धारण करने से ही वीर्य का लाभ होता है, इसी प्रकार मनुस्मृति में भी लिखा है कि—

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ १०८ ॥

—मनु० अ० २

ब्रह्मचारी को चाहिये कि सर्वदा अकेला सोया करे, और कभी वीर्यपात न करे, यदि भूलकर के भी सुख के वास्ते ब्रह्मचारी एक बार भी वीर्य को गिरा दे, तो उस ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार महाभारत में लिखा है कि—

लिङ्गसंयोगहीनं यच्छब्दस्पर्शविवर्जितम्।
श्रोत्रेण श्रवणं चैव चक्षुषा चैव दर्शनम् ॥ ८ ॥
वाक्संभाषाप्रवृत्तं यत्तन्मनः परिवर्जितम्।
बुद्ध्या चाध्यवसीयीत ब्रह्मचर्य्यमकल्मषम् ॥ ९ ॥

—महा० शां० अ० २१४

ब्रह्मचर्य उसको कहते हैं कि, गुह्येन्द्रिय का गुह्येन्द्रिय से स्पर्श तो क्या, परन्तु बिना निमित्त हस्तादि से भी स्पर्श न हो, और विषयसम्बन्धी बुरी बातों को न सुने, और आँखों से स्त्री आदि ब्रह्मचर्य व्रत के नाश करने वाली चीजों को कुदृष्टि से कभी न देखे, और वाणी से विषय सम्बन्धी झूठी बातें तथा निरर्थक बातें न कहे, और मन से विषय सम्बन्धी बुरी बातें तथा किसी को हानि पहुँचाने की बातों को न सोचे, और जो काम करे उसको बुद्धि से प्रथम विचार के करे, अथवा जो कुछ अध्ययन करे, उसका अर्थ यथार्थ जानकर, ठीक-ठीक निश्चय कर ले, इसी को ब्रह्मचर्य कहते हैं। यहाँ पर कोई ऐसी शंका करे कि, कोई पुरुष, विद्याभ्यास के बिना वीर्य का रक्षण करे तो वह ब्रह्मचर्यव्रत हो सकता है या नहीं? इसका उत्तर यह है कि विद्याभ्यास के बिना, वीर्य के रक्षण करने को भी किसी अंश में ब्रह्मचर्य कह सकते हैं, परन्तु वास्तविक ब्रह्मचर्य वही है कि, जितेन्द्रिय रहकर, विद्याभ्यास

करना जैसा कि महाभारत में लिखा है—

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्य्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते॥ ११॥

—उद्यो० प० अ० ४४

जो मनुष्य जितेन्द्रियवादि सदाचारों से पवित्र होकर, विद्या को प्राप्त करता है, वह ब्रह्मचर्य का प्रथम पाद अर्थात् पहिला भाग है। एवं ऐसे ही—

धर्मादयो द्वादश यस्य रूपमन्यानि चाङ्गानि तथा बलं च आचार्ययोगे फलतीति चाहुर्ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्य्यम॥ १७॥

—भा० उद्यो० अ० ४४

धर्म, सत्य, तप, दम (अर्थात् जितेन्द्रियता), **अमात्सर्य्य** (अपने से अधिक वैभव वाले को देख के ईर्ष्या न करना) **तितिक्षा** (अपने पर दुःख पड़ने से न घबराना) **अनसूया** (निन्दा का न करना) **दानम्** (विद्यादि उत्तम पदार्थों का देना) **श्रुतम्** (लौकिक व पारमार्थिक सिद्धान्तों का सुनना) **धृतिः** (धारणाशक्ति को बढ़ाना) **क्षमा** (सहनशीलता होना) यह पूर्वोक्त बारह, तथा यम नियमादि और शारीरिक व मानसिक बलादि, ये सब ब्रह्मचर्य के रूप हैं। इस ब्रह्मचर्य की सिद्धि मुख्य करके आचार्य के पास अर्थसहित वेदादि विद्याओं के पढ़ने से ही होती है।

उपनिषदों में भी ब्रह्मचर्य के विषय में कहा गया है—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

—कठ० वल्ली २ श्लोक १५

सब वेद, सब धर्मानुष्ठान रूप तपश्चरण, जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उसका नाम 'ओ३म्' है।

श्रौतसूत्र में भी ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है—

समानं ब्रह्मच्चर्यं॥ —श्रौतसूत्र पटल १५

बालक और कन्याओं का ब्रह्मचर्य समान है।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में ब्रह्मचर्य का वर्णन पाया जाता

पञ्चभूतों का सार

छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक में लिखा है—

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः, अपा मोषधयो रसः, ओषधीनां पुरुषो रसः, पुरुषस्य वाग्रसो, वाच ऋग्रस, ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

स एष रसानाꣳ रसतमः परमः पराध्र्योऽष्टमो यदुद्गीथ ॥ ३ ॥

अर्थ—इन पञ्चभूतों का समस्त भूतों का सारमय होने से पृथिवी रस है। पृथिवी का जल रस=सार है। जल का ओषधि=अन्नादि रस है। ओषधियों का पुरुष रस है। पुरुष का रस वाणी है। वाणी का ऋचाएँ रस है। ऋचा का रस साम गान है। साम का रस ओङ्कार है।

जो उद्गीथ=ओङ्कार है वह यह आठवाँ रस, सम्पूर्ण रसों में उत्कृष्ट रस सर्वश्रेष्ठ सर्वोच्च स्थान है।

व्याख्या—रस शब्द, सार, कारण, आधार, जीवन रस, आश्रय, स्थिति, गति, भूषण, सुन्दर, तेज आदि अनेक अर्थों में आया है। यहाँ भी कारण आदि अर्थों ही में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।

ओषधि से वीर्य और वीर्य से पुरुष की उत्पत्ति सर्वसम्मत सिद्धान्त है। संस्कृत में जल के अनेक नामों में से एक नाम जीवन भी है।

पुरुष का रस वाणी इसीलिए है कि उसी से पुरुष की योग्यता आदि सभी बातें प्रकट हो जाती है। यहाँ वाणी का मुख्य रीति से अभिप्राय उस वाणी से है। जो मनुष्य के ज्ञान, अनुभव और लोकहित की भावना से पूर्ण कल्याणमयी वाणी उसके हृदय से रस की तरह निकला करती है। उसी वाणी का सार=आधार ऋचाएँ और ऋचाओं का रस=शोभा सामगान हुआ करती है। उस सामगान का असली सार सर्वोत्कृष्ट उद्गीथ=ओङ्कार ही है ॥ २-३ ॥

अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः। —तैतीरियोपनिषद्

अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न होता है।

सुश्रुतांचार्य ने लिखा है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जातः शुक्रसम्भवः॥

भोजन किये हुए पदार्थ से पहले जो तत्त्व बनता है, उसे रस कहते हैं, उस रस का नाम वीर्य है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद (मांस के ऊपर चिकनाई) उत्पन्न होता है, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य-'वीर्य' अन्तिम धातु है। शरीरूपी मशीन में इसके बनने का दर्जा सातवाँ है। इसके बनाने में शरीर को जीवन के लिये आवश्यक अन्य पदार्थों की अपेक्षा अधिक परिश्रम करना पड़ता है। रस की अपेक्षा रक्त में तत्त्व भाग अधिक है। उतरोत्तर सार-भाग बढ़ता ही जाता है। शरीर की भौतिक शक्तियों का अन्तिम सार वीर्य है। थोड़े से वीर्य को बनाने के लिये रक्त की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। किंचिन्मात्र वीर्य का नष्ट हो जाना अत्यधिक रुधिर के नष्ट हो जाने के बराबर है। आयुर्वेद के इस सिद्धान्त को अनेक पाश्चात्य पण्डितों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। डॉ० कोवन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि सांइस ऑफ ए न्यू लाइफ' के १०६ पृष्ठ पर लिखा है—"शरीर के किसी भाग में से यदि ४० औंस रुधिर निकाल लिया जाये, तो वह एक औंस वीर्य के बराबर होता है, अर्थात् ४० औंस रुधिर के एक आँस वीर्य बनता है।"

पुरुष चालीस दिन तक जो विविध प्रकार का और पौष्टिक भोजन करता है, वह यदि ठीक प्रकार से पच जाये तो उससे एक सेर शुद्ध रक्त बनता है फिर उस एक सेर शुद्ध रक्त से एक तोला शुद्ध वीर्य बनता है। अतः ब्रह्मचर्य एक महामूल्य या अमूल्य महौषध है। मानव के ऊँचे उठाने के लिये है और ब्रह्मचारी के लिये तो ब्रह्मचर्य संजीवन रसायन है। विद्या प्राप्ति में अनिष्फल साधन है। और भी कहा है—

ओजस्तु तेजो धातूनां, शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
यन्नाशे नियतं नाशो, यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥

—वृद्ध वाग्भट

ओज रस से लेकर वीर्य पर्यन्त धातुओं का तेज है, जिस के नष्ट होने पर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसके रहने पर ही जीवन धारण किया जा सकता है।

ओजः सर्वशरीरस्थं, स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य, बलपुष्टिकरं मतम्॥

—योग चिन्तामणि

ओज का निवास सब शरीर भर में है। यह चिकना, शीतल, स्थिर, उज्ज्वल होता है। यह शरीर भर में तेज फैलाने वाला और बल-पुष्ट का बढ़ाने वाला है।

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तञ्च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव, रक्षणीयं प्रयत्नतः॥

चित्त के अधीन मनुष्य का वीर्य होता है, और वीर्य के वश में जीवन है। इसलिए मन और वीर्य की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

शुक्रायतं बलं पुसः। —वैद्यक

इसके कारण पुरुष का शारीरिक बल वीर्य होता है।

शील और ब्रह्मचर्य

आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१।३।१७-२४) में ब्रह्मचारी का शील इस प्रकार वर्णित किया गया है—

मृदुः॥ १७॥

ब्रह्मचारी कोमल स्वभाव वाला हो, कठोर न हो।

शान्तः॥ १८॥

वह सदा शान्त रहे, जितेन्द्रिय हो।

दान्तः॥ १९॥

वह मन को वश में रखने वाला हो, अपने कर्त्तव्यपालन में सदा तत्पर रहे।

ह्रीमान॥ २०॥

वह लज्जाशील हो।

दृढधृतिः॥ २१॥

वह दृढ़ निश्चय वाला हो अथवा पक्की धारणा वाला हो।

अंग्लाँस्तु: ॥ २२ ॥

वह उत्साह-सम्पन्न हो।

अक्रोधन ॥ २३ ॥

वह क्रोधरहित हो किसी पर क्रोध न करे।

अनसूयु: ॥ २४ ॥

अनिन्दक-निन्दाशील न हो।

ब्रह्मचारी दूसरे के अभ्युदय=उन्नति को देखकर जलनेवाला न हो। विपरीत इसके कठोरता, अशान्ति, घबराहट, अजितेन्द्रियता, निर्लज्जता, अदृढ़, संकल्प, अस्थिर धारणा, क्रोध और निन्दा से मनुष्य के रक्त में उष्णता उत्तेजना मन में विक्षोभ आने से आन्तरिक भाव से या स्वभावत: वीर्य नाश कई प्रकार से हो जाता है।

(क) एक शयीत सर्वत्र। —मनु० २।१८०

ब्रह्मचारी सदा अकेला सोए, दूसरे के साथ बिस्तरे पर न सोए। दूसरे के साथ सोने से भी स्पर्शवश काम-वासना जाग जाती है। तथा **''दिवा मा स्वाप्सी''** ब्रह्मचारी को दिन में सोता रहेगा, तो रात्रि में नींद न आयेगी या कम आयेगी, क्योंकि मन में प्रत्येक कार्य करने की शक्ति सीमित है जब सोने की शक्ति दिन में व्यय हो गई तब रात्रि में नींद न आयेगी, स्वप्न आयेंगे। पुनः अनुचित स्वप्नों में स्वप्नदोष की सम्भावना है ही।

शास्त्रों में ब्रह्मचारी को स्वाद की दृष्टि से नहीं, किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा भोजन करना चाहिये। अधिक क्षार, खट्टा, तीखा भोजन करने का निषेध है, ऐसा भोजन उत्तेजक है हानिकारक है।

ब्रह्मचर्य और विद्या अध्ययन

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण-कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता, क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोरी आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः, सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये, धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम-पालनयुक्त और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी-जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं। विना इसके किसी को शोभा प्राप्त नहीं होती।

इसलिए आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके, यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक-दूसरे से दूर होनी चाहिए। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा नौकर-चाकर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और

पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और लड़कों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें। और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त हो के, आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहे। सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जाएँ, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों। सबको तपस्वी होना चाहिए। उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर, केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जाएँ, तब उनके साथ अध्यापक रहें, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० [७।१५२] का श्लोक है॥

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों, लड़कियों को घर में न रखके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे, वह दण्डनीय हो।

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥

—यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय [श्लोक ५] का वचन है।

ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य; क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्यों का है। इस विधि के पश्चात् पाँचवें वा आठवें

वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और कन्या कन्याओं की पाठशाला में जावें और निम्नलिखित नियमपूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

—यह मनुस्मृति [३।१] का श्लोक है॥

अर्थ—आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त, अर्थात् एक-एक वेद के साङ्गोपाङ्ग पढ़ने में बारह-बारह वर्ष मिल के छत्तीस और आठ मिल के चवालीस, अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिलके छब्बीस, वा नौ वर्ष तथा जब तक विद्या पूर्ण ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विꣳशत्याक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति॥ १॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ २॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳसवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षराणि त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिꣳसवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳसर्वꣳ रोदयन्ति॥ ३॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳरुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ ४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳ-शदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते॥ ५॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवन-मायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति॥ ६॥

—यह छान्दोग्योपनिषद् [३।१६।१-६] का वचन है॥

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम।

उनमें से कनिष्ट—जो यह पुरुष अन्नरसमय देह और पुरि अर्थात् देह में शयन करनेवाला जीवात्मा, यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सङ्गत और सत्कर्त्तव्य है। इसको अवश्य है कि २४ वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे। और विवाह करके भी लम्पटता न करे, तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं॥ १॥

इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में संतप्त करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्खे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य से रहूँगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्य, बलवान् हो के, शुभगुणों को वसानेवाले मेरे प्राण होंगे। हे मनुष्यो! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो, जो मैं ब्रह्मचर्य का लोप न करूँ। २४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूँगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक रहेगा॥ २॥

मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है, उसके प्राण, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त हो के, सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते हैं॥ ३॥

जो मैं इसी प्रथम वय में जैसा आप कहते हैं, कुछ तपश्चर्या करूँ, तो मेरे ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। हे ब्रह्मचारी लोगो! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ। जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न करके यज्ञस्वरूप होता हूँ और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित होता हूँ। जैसाकि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है, वैसा तुम किया करो॥ ४॥

उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है। जैसे ४८ अक्षर की जगती, वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण करते हैं॥ ५॥

जो आचार्य और माता-पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिए तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप-ही-आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष

पर्यन्त आयु को बढ़ावें, वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते, वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेतिं। आषोडशाद् वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥

—[तुलना–सु० १।३५।२९]

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

—यह सुश्रुत के सूत्रस्थान का वचन है [सु० १।३५।१३]॥

इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो जन्म से लेकर १६वें वर्ष पर्यन्त, दूसरा यौवन १६वें वर्ष से लेके २५वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। तीसरी सम्पूर्णता, जो पच्चीसवें वर्ष से ले के चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी किञ्चित्परिहाणि, जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं, तदन्तर जो धातु बढ़ता है, वह शरीर में नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वार से बाहर निकल जाता है। वही ४०वाँ वर्ष उत्तम समय विवाह का है, अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्ष में विवाह करना।

प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री वा पुरुष दोनों का तुल्य ही है?

उत्तर—नहीं, जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे, तो १६ सोलह वर्ष पर्यन्त कन्या। जो पुरुष तीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी रहे, तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष छत्तीस वर्ष रहे, तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २४ चौबीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे, अर्थात् ४८वें वर्ष से आगे पुरुष और २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिए, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है। और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों, तो भले ही रहें, परन्तु यह

काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम के, इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

महर्षि द्वारा रचित संस्कार विधि में पुनः ब्रह्मचर्य के विषय में कहा गया है—

(पच्चीस) वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जोकि आगे ४४ (चवालीस) वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है, उसको पूर्ण करने के लिए मुझमें सामर्थ्य न हो सकेगा, किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है, इसलिए क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूँ जो इस शरीर, प्राण, अन्तःकरण और आत्मा के संयोगरूप सब शुभ गुण-कर्म और स्वभाव के साधन करने वाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य-देह धारण के फल से विमुख रहूँ? और सब आश्रमों के मूल, सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सबके मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महादुःखसागर में कभी न डूबूँगा? किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोगरहित होता है। इसलिए तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूँगा॥ ३॥

और जो ४४ (चवालीस) वर्ष तक, अर्थात् जैसा ४४ (चवालीस) अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है, तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिसके आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह सब दुष्ट कर्म करनेवालों को सदा रुलाता रहता है॥४॥

यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करनेवाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो, उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि—जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता और विषय-सम्बन्धी भी अधिक आनन्द होता है, वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता, क्योंकि सांसारिक व्यवहार, विषय और परमार्थ-सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं। इसलिए मैं इस सर्वोत्तम सुख-प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान्, बलवान्, आयुष्मान्, धर्मात्मा होके सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊँगा।

तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं और अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट कभी न करूँगा॥५॥

और जो ४८ (अड़तालीस) वर्षपर्यन्त, जैसाकि ४८ (अड़तालीस) अक्षर का जगती छन्द होता है, वैसें इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या, पूर्णबल, पूर्णप्रज्ञा, पूर्ण शुभ गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है॥६॥

यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे, उसको ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि—अरे छोकरों के छोकरे! मुझसे दूर रहो। तुम्हारे दुर्गन्धिरूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूँ। मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूँगा। इसको पूर्ण करके सर्वरोगों से रहित, सर्वविद्यादि शुभ गुण-कर्म-स्वभावसहित होऊँगा। इस मेरीं शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे। जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ाके, विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूँ॥७॥

चतस्त्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेति। तत्राषोडशाद् वृद्धिः। आपञ्च-विंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतस्सम्पूर्णता। ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥१॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥२॥

यह धन्वन्तरिजीकृत सुश्रुतग्रन्थ का प्रमाण है।

अर्थ—इस मनुष्य देह की चार अवस्था हैं—एक वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी सम्पूर्णता, चौथी किञ्चित हानि करनेहारी। इनमें सोलहवें वर्ष से आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष में पूर्ति वाली वृद्धि की अवस्था है। जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा, वह जैसे कुल्हाड़े से काटे वृक्ष वा दण्डे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चात्ताप करेगा। पुनः उसके हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा। दूसरी जो युवावस्था उसका आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष से और पूर्ति ४० चालीसवें वर्ष में होती है। जो कोई इसको यथावत् संरक्षित न कर रक्खेगा, वह अपनी भाग्यशालीनता को नष्ट कर देवेगा। और तीसरी पूर्ण युवावस्था चालीसवें वर्ष में होती है। जो कोई ब्रह्मचारी

होकर पुनः ऋतुगामी, पर-स्त्रीत्यागी, एकस्त्रीव्रत, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा, वह भी बना-बनाया धूल में मिल जाएगा और चौथी चालीसवें वर्ष से यावत् निर्वीर्य न हो, तवात् किञ्चित् हानिरूप अवस्था है। यदि किञ्चित् हानि के बदले वीर्य की अधिक हानि करेगा, वह राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जाएगा और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित रक्खेगा, वह सर्वदा आनन्दित होकर सब संसार को सुखी कर सकेगा॥ १ ॥

अब इसमें इतना और विशेष समझना चाहिए कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एक-सा समय नहीं है, किन्तु जितना सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में सोलहवें वर्ष में हो जाता है। यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष और १६ सोलह वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्यवाले होते हैं। इसलिए इस अवस्था में जो विवाह करना, वह अधम विवाह है॥ २ ॥

और जो १७ सत्रह वर्ष की स्त्री और ३० तीस वर्ष का पुरुष, १८ अठारह वर्ष की स्त्री और ३६ छत्तीस वर्ष का पुरुष, १९ उन्नीस वर्ष की स्त्री और ३८ अड़तीस वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इसको मध्यम समय जानो।

और जो २० बीस, २१ इक्कीस, २२ बाईस, २३ तेईस वा २४ चौबीस वर्ष की स्त्री और ४० चालीस, ४२ बयालीस, ४४ चवालीस, ४६ छयालीस और ४८ अड़तालीस वर्ष का पुरुष होकर विवाह करे, वह सर्वोत्तम है।

कन्या और ब्रह्मचर्य

वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्व० अनु० ३। प्र० २४। कां० ११। मं० १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य-सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं, वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य-

सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त, युवती होके, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय, विद्वान् (युवानम्) और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे, इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

इसलिए वे धन्य और कृतकृत्य हैं जो कि अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ाते हैं। जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्टमित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोश अक्षय है। इसको जितना व्यय करे, उतना ही बढ़ता जाए। अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निज भाग ले लेते हैं और विद्याकोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश का, रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० [७।१५२]॥

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने, तो उसके माता-पिता को दण्ड देना, अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्यकुल में रहें। जब तक समावर्त्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

—मनु० [४।२३३]॥

संसार में जितने दान हैं, अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिए जितना बन सके उतना प्रयत्न, और धन का विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है।

आयु और ब्रह्मचर्य

(क) प्रथमे नार्जितं विद्या, द्वितीय नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं, चतुर्थे किं करिष्यति॥

प्रथम ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्या का अभ्यास करना चाहिये। द्वितीय अवस्था में धनोपार्जन, अर्थात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। तृतीय अवस्था में वानप्रस्थ अर्थात् 'पुण्य' ब्रह्मचर्य का पालन परोपकार के कार्यों में हाथ बटाना चाहिये। चतुर्थावस्था में मनुष्य का शरीर शिथिल होने पर कुछ भी नहीं कर सकेगा।

(ख) ऐतरेय ब्राह्मणकार ने पुण्य के विषय में प्रश्नोत्तर करके स्वयं उत्तर भी दिया है।

"किं पुण्यम्? ब्रह्मचर्यम्।"

अर्थात् संसार में सब पुण्यों का पुण्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य के दीवाने का परीक्षा लेना चाहें तो पता चलेगा कि वह ब्रह्ममुर्हुत में कभी भी शयन नहीं करता। ब्रह्ममुर्हुत में सोने वाला व्यक्ति कभी भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। क्योंकि स्वप्नदोषादि रोग प्रातःकाल सोते रहने से जो मल-मूत्र से मलाशय और मूत्राशय भरे हुए होते हैं उनकी वीर्यकोष पर जो-दबाव पड़ता है, और उसी से वीर्य नष्ट हो जाता है। और गन्दे स्वप्न भी प्रातःकाल के पीछे ही आते हैं। जो स्वप्न दोष का कारण बनते हैं। प्रातःकाल सोने वाले व्यक्ति के आरोग्य स्वास्थ्य, बल, बुद्धि, तेज को हर के निर्बल, दरिद्र, निर्बुद्धि और अल्पायु बनाती हैं। कहा भी गया है—

"ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।"

ब्राह्ममुर्हुत में सोना सब पुण्यों अर्थात् शुभ कार्यों का क्षय (नाश) करने वाला होता है।

ब्रह्मचर्य और वेदवेता महर्षि भरद्वाज

भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्यमुवास। तं ह जीर्णं स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाच। भारद्वाज! यत्ते चतुर्थमायुर्दद्यां किमनेन कुर्या इति। ब्रह्मचर्यमे वैतेन चरयेमिति होवाच। तं त्रीन् गिरिरूपान् विज्ञातानिव दर्शयाञ्चकार तेषां हैकैकस्मान्मुष्टिमाददे। स होवाच

भरद्वाजेत्यामन्त्र्य वेदा वा एते, अनन्ता वै वेदाः एतैस्त्रिभिरायुर्भिरन्ववोचथाः अतस्त इतरदनूक्तमेव॥

—तै० ब्रा० ३।१०।११।३

अर्थात् भरद्वाज ने ३०० वर्षपर्यन्त (मनुष्य की ३ आयु **शतायुर्वै पुरुषः** के अनुसार १००×३=३०० ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदों का अध्ययन किया। इस प्रकार अध्ययन करते-करते वह जब अत्यन्त वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया तो इन्द्र ने उसके समीप आकर कहा यदि तुझे और भी आयु मिले तो तू उससे क्या करेगा? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि उससे भी मैं वेदों का अध्ययनादि रूप ब्रह्मचर्य ही करूँगा। इन्द्र ने पर्वत के समान तीन ज्ञान राशिरूप वेदों को दिखाया और उनमें से प्रत्येक राशि से मुट्ठी-सी भरली और भरद्वाज को कहा कि ये वेद इस प्रकार ज्ञान की राशि या पर्वत के समान हैं जिनके ज्ञान का कहीं अन्त नहीं। यद्यपि तूने ३ आयु पर्यन्त (३०० वर्ष तक) वेदों का अध्ययन किया है तथापि तुझे उनके सम्पूर्ण ज्ञान का अन्त नहीं प्राप्त हुआ।

वेदवेता नारदमुनि और ब्रह्मचर्यव्रती सनत्कुमार

कहते हैं कि एक बार सनत्कुमार अर्थात् सदा ब्रह्मचर्य व रूप रहनेवाले ऋषि के पास नारदमुनि पहुँचे और उनसे कहा, भगवन्! मुझे ज्ञान दीजिए। ऋषि ने कहा, जो कुछ तुम पहले जानते हो वह बतलाओ, तब मैं उससे आगे तुम्हें शिक्षा दूँगा। नारद ने कहा—

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि॥ —छान्दोग्य उपनिषद्

भगवन्! मैंने ऋग्वेद पढ़ा है, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहास-पुराण, वेदों के वेद (अर्थात् जिससे वेद स्पष्ट हो जाते हैं), पित्र्य (शूश्रूषा-विज्ञान) राशि (गणित) दैवविद्या (उत्पत्ति-विज्ञान), वाकोवाक्य (तर्कशास्त्र या कानून), एकायन (नीतिशास्त्र-अर्थशास्त्र), देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्म-विद्या (ब्रह्म का ज्ञान), भूत-विद्या (भौतिकी रसायन तथा प्राणि-शास्त्र)

क्षत्र-विद्या (धनुर्विद्या), नक्षत्रविद्या (ज्योतिष), सर्प-विद्या (विष-ज्ञान), देवजनविद्या (ललित कला)—इन्हें भी पढ़ा है।

भगवन्! यह सब-कुछ पढ़कर मैं 'मन्त्रवित्' हुआ हूँ 'आत्मवित्' नहीं हुआ—मुझे शब्दज्ञान तो हो गया है, आत्मज्ञान नहीं हुआ है।

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मवादिनी सुलभा

वैदिककाल में स्त्रियाँ ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थीं। यजुर्वेद के १४।४ में स्त्री को 'सोमपृष्टा' कहा है जिसका अभिप्राय यह है कि वह वेद-मन्त्रों के विषय में जिज्ञासा करती रहती है। महाभारत में 'सुलभा' नाम की ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी हुई है, जोकि उस समय में प्रसिद्ध थी। सुलभा का सङ्कल्प था कि जो कोई उसे शास्त्रार्थ में परास्त कर देगा, उसी से विवाह करेगी। सुलभा का यह निश्चय उसके अगाध पाण्डित्य का द्योतक है। उसके जनक महाराज के साथ शास्त्रार्थ का वृत्तान्त पाया जाता है जिसने अपना परिचय जनक महाराज को इन शब्दों में दिया है—

प्रधानो नाम राजर्षिव्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां, सुलभां नाम विद्धि माम्॥
साहं तस्मिन् कुले जाता, भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु, चराम्येका मुनिव्रतम्॥

—शान्तिपर्व अ० ३२०।८२

अर्थात् मैं सुप्रसिद्ध राजर्षि के कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ। अपने योग्य पति न मिलने से मैंने गुरुओं से वेदादि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यासाश्रम ग्रहण कर लिया है।

विमर्श—इससे स्पष्ट होता है कि सुलभा देवी केवल वेदों की विदुषी ही न थी वह वेदों का अध्यापन भी कराती थी।

उर्ध्वरेता और नैष्ठिक ब्रह्मचारी

अष्टाशीति सहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां ।
बभूवुस्तत्रागस्याषृमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः॥

—महाभाष्य अ० ४ पा० १ सू० ७८

अठासी हजार उर्ध्वरेता ऋषि नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए हैं उनमें से अगस्त्य प्रभृति आठ ऋषियों ने सन्तति उत्पन्न की। जिसमें आज के युग में उर्ध्वरेता महर्षि दयानन्द सरस्वती हुए हैं।

स्त्री ब्रह्मा है

स्त्री हि ब्रह्मा वभूविथ। —वेद

हे नारी! तू नीचे देख, ऊपर को मत देख। दोनों पाँवों को सावधानी पूर्वक रख कर चल, तेरे किसी प्रकार के अङ्ग दिखाई न दे, क्योंकि स्त्री को ब्रह्मा कहा है। स्त्री ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। ब्रह्मा अर्थात् सन्तान को उत्पन्न करने वाली है। विष्णु अर्थात् सन्तान को पालन करने वाली है। महेश अर्थात् सन्तान को नाना प्रकार के संस्कारों से उसके जीवन का निर्माण करती है। आज की नारी अर्ध नग्न नारीश्वर के कारण सृष्टि का क्रम बिगड़ रहा है। राष्ट्र निर्मात्री न होकर पतन की ओर अग्रसर है। खान-पान, पहनावा और पश्चिमी सभ्यता अन्धानुकरण है।

विद्या और ब्रह्मचर्य

निरुक्त में कहा कि—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूयाः वीर्यवती यथा स्याम्॥

विद्या ब्राह्मण के पास गई और बोली—हे ब्राह्मण देवता! तू मेरा रक्षक है, अतः मेरी रक्षा कर। मुझे उन निन्दक लोगों, कपटाचारी और ब्रह्मचर्यहीन को मत दे, जो मुझे प्राप्त कर मेरी निन्दा कराते हैं। ऐसों को दे जो निन्दा आदि गुणों से रहित हों, जिससे मैं वीर्यवती हो जाऊँ।

ब्रह्मचर्य और राजा

ब्र॒ह्म॒चर्ये॑ण॒ तप॑सा॒ राजा॑ रा॒ष्ट्रं वि र॑क्षति।
आ॒चा॒र्यो॑ ब्र॒ह्म॒चर्ये॑ण ब्रह्मचा॒रिण॑मिच्छते॥

—अथर्व० ११।५।१७

ब्रह्मचर्य के तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है और आचार्य ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा ब्रह्मचारी की इच्छा अर्थात् चाहता है। आचार्य अपने ब्रह्मचर्य के बल से ब्रह्मचारियों का हित साधता है। राजा ब्रह्मचर्य के बल से प्रजा को सुख पहुँचता है। अर्थात् अपने प्रभाव से प्रजा पर शासन करता है। राजा बल का प्रतीक है तो आचार्य ज्ञान का प्रतीक है। इस प्रकार से राजा और आचार्य दोनों मिलकर राष्ट्र की सेवा करते हैं।

इस देश में बहुत से राजा हुए जिनमें अश्वपति नामक राजा का नाम उलेखनीय है।

हिमालय की ऊँची चोटी से महर्षि मनु ने उच्च स्वर में शिक्षा एवं चरित्र का पाठ पढ़ाया—

अहा! कैसा स्वर्णिम युग था वह, जब संसार भर के जिज्ञासु-पिपासुजन—आत्मकल्याणार्थ आर्यावर्त्त देश के तपस्वी ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर चरित्र की शिक्षा लेते थे। अश्वपति राजा के भवन में जब उद्दालक मुनि पधारे तो मुनि ने राजा के आतिथ्य की उपेक्षा की। अश्वपति समझ गये कि मुनि राजा के अन्न को सम्भवतः दूषित समझकर आतिथ्य सत्कार स्वीकार नहीं कर रहे हैं। तब अश्वपति (राष्ट्रपति) आत्मविश्वास के साथ घोषणा पूर्वक कह रहे हैं—

न मे स्तेनों जनपदे न कदर्यो वा न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्न ना विद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

—छान्दोग्य ५।११।५

मुनिवर! मेरे जनपद (राज्य) में न कोई चोर है, कोई

कञ्जूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो। कोई अशिक्षित नहीं है, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है तो फिर व्यभिचारिणी होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

विमर्श—तत्कालीन समय में वैदिक धर्मानुसार ब्रह्मचर्य का आचरण करते थे।

ब्रह्मचर्य्येण वै लोकान् जयन्ति परमर्षयः।

ब्रह्मचर्य से ही महर्षिजन लोक-लोकान्तरों को जीतते हैं। अर्थात् पूर्वकाल के ऋषि-महर्षियों ने ब्रह्मचर्य से लोक-लोकान्तरों को पराजित किया।

आचार्य्य चाणक्य के कथनानुसार राजा को इन्द्रियजित ब्रह्मचारी होना चाहिये।

जैसा कि चाणक्य सूत्र में लिखा है—

(१) सुखस्य मूलं धर्मः।

सुख धर्म से प्राप्त होता है, अर्थात् धर्म मानवोचित कर्त्तव्यों का पालन ही सुख का मूल है।

(२) धर्मस्य मूलं अर्थः।

धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ को सुरक्षित रखने के लिये राज्य व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण सहयोग होता है।

(३) अर्थस्य मूलं राज्यम्।

अर्थ का मूल है—राज्य, अर्थात् राज्य की सहायता अथवा व्यवस्था के बिना धन संग्रह करना कठिन है। धन संग्रह के लिये राज्य में स्थिरता और शान्ति स्थापित होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जब तक राज्य में अशान्ति रहती है तब तक राज्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

(४) राज्यमूलमिन्द्रिय जय।

राज्य का मूल इन्द्रियजित होता है, अर्थात् अपनी इन्द्रिय को वश में रखना।

(५) इन्द्रिय जयस्य मूलं विनय।

इन्द्रिय जय का मूल कारण विनय है, विनय अर्थात् नम्रता सुशीलता है।

(६) विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।

ज्ञान वृद्धो की सेवा विनय का मूल है।

(७) वृद्धसेवया विज्ञानम्।

ज्ञान वृद्ध की सेवा से विज्ञान की प्राप्ति होती है। मनुष्य वृद्धों की सेवा से ही व्यवहार कुशल होता है और उसे अपने कर्त्तव्य की पहचान होती है।

(८) विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत्।

राज्याभिलाषी लोग विज्ञान, व्यवहार-कुशलता या कर्त्तव्य का परिचय प्राप्त करके अपने आप को योग्य शासक बनाये।

(९) सम्पादिता जितात्मा भवति।

जो पुरुष ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होता है, वह स्वयं को भी जीत सकता है, अर्थात् वही संसार में सफल होता है।

(१०) जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत्।

अपनी इन्द्रियाँ को वश में करने वाला मनुष्य सच्चे अर्थों में सम्पन्न होता है, अर्थात् नीति जानने वाले और अपने ऊपर नियन्त्रण रखने वाले लोग अपने आप को समस्त सम्पतियों से सम्पन्न समझे जो व्यक्ति अपने आप को जीत लेता है, अर्थात् अपने ऊपर नियन्त्रण कर लेता है उसकी यह विशेषता होती है कि वह जो कार्य अपने हाथ में लेता है उसे सम्पूर्ण करके ही छोड़ता है। ऐसे व्यक्ति ही धन-धान्य और सम्पतियों के स्वामी होते हैं। लक्ष्मी और जो जितेन्द्रिय होता है सिद्धियाँ ऐसे व्यक्ति के वश में रहती है।

आद्य शंकराचार्यजी द्वारा प्रश्नोतरी के रूप में इन्द्रियजित कौन हैं का दिग्दर्शन कराया—

(१) प्रश्न—**के शत्रवः सन्ति।**

शत्रु कौन है।

उत्तर—**निज इन्द्रियाणि।**

अपनी ही इन्द्रियाँ।

(२) प्रश्न—**के मित्राणि।**

मित्र कौन है।

उत्तर—**यानि तानि जितानि।**

इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेवे तो वही मित्र है।

विमर्श—इन्द्रियों को वश में करना ही ब्रह्मचर्य जीवन है।

पहला उपस्तम्भ

आहार

आहार निद्रा ब्रह्मचर्यमिति त्रयोपस्थम्भा।

अर्थात्—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य शरीर के तीन खम्भे हैं। इन्हीं तीन खम्भों पर हमारा शरीर स्थित है।

आहार अर्थात् सन्तुलित भोजन स्वप्न (निद्रा) अर्थात् पूर्ण विश्राम और ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम। इन तीनों उपस्तम्भों की युक्तियुक्त रखने से शरीर सदा ही पूर्ण स्वस्थ्य रहकर दीर्घायु होता है।

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह पुरुषार्थचतुष्टय मानव जीवन का उद्देश्य है। इस पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि का मूल कारण आरोग्य है। शरीर यदि स्वस्थ नहीं, रोगी है, तो पुरुषार्थचतुष्टय की तो क्या बात, शौच स्नानादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान भी भली-भाँति नहीं किया जाता। रोगी स्वयं दूसरों पर भार होता है, वह किसी की क्या सेवा या उपकार कर सकता है तथा क्या धर्म कमा सकता है। इसलिए शरीर की स्वस्थता को पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिये हमारे शास्त्रकारों ने सर्वप्रथम और मुख्य स्थान दिया है। यह पाँच भौतिक शरीर भोजन के द्वारा ही हृष्ट-पुष्ट और दृढाङ्ग होता है। शरीर का उपचय-अपचय=वृद्धि और ह्रास भोजन पर ही निर्भर है। यदि शरीर को यथासमय उचित भोजन मिलता रहता है तो शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बन जाता है अन्यथा स्वास्थ्य गिर जाता है। भोजन जैसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना अपने जीवन की उपेक्षा करना है। इसलिए कहा है पहला सुख निरोगी काया।

आहार के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

आहार के शुद्ध होने से अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि आदि की शुद्धि होती है, बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ वा स्थिर हो जाती है, स्मृति के दृढ़ होने पर सब (हृदय की) गाँठें खुल जाती हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन ढीले हो जाते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार गीता में भी आहार के विषय में कहा है—

'योग' की प्राप्ति के लिए भगवद्गीता में जो पहला और अत्यावश्यक साधन बतलाया गया है, वह युक्त आहार और विहार है। कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

—गीता ६।१७

जिस का आहार (भोजन), विहार (रहन-सहन) नियमित है, जिसका आचरण संयम से युक्त है और जिसका सोना तथा जागना नपा-तुला है उसके लिए योग दुःख का नाशक है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में भी उल्लेख किया है—

आहारः प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः।
स्मृत्यायुःशक्तिवर्णोजःसत्त्वशोभाविवर्धनः॥

—भाव० ४।१

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, कान्ति, उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है। इससे सिद्ध हुआ कि—'आहार हमारा जीवन है।' चरकशास्त्र में कहा है—

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौप्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा॥

शरीर के अन्दर जो अग्नि है उसी के आश्रय से देह में प्राण स्थिर रहते हैं। यह अग्नि बल, आरोग्य और आयु को प्रतिष्ठित करने वाली है अथवा यह कह सकते हैं कि अन्तरग्नि पर देह की स्थिति है। अन्न-पान रूपी ईन्धन से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है, इस अग्नि का दीपन और शमन भोजन से ही होता है। यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि अन्न-पान के सेवन से आयुपर्यन्त प्राण

रहते हैं। इसी विषय में चरक महर्षि ने लिखा है—

आयुर्वै घृतम् सद्यः शुक्रकरं पयः ।
विना गोरसं को रसं भोजनानां तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्॥

आदि-आयुर्वेद ग्रन्थों के ये वाक्य जिनमें लिखा है—घी खाने से आयु बढ़ती है, दूध पीने से वीर्य बहुत शीघ्र बनता है, तक्र तो शक्र (इन्द्र) को भी दुर्लभ है तथा गाय के दूध, घी, मट्ठा आदि के बिना तो भोजन व्यर्थ है। कुछ लोग समझते हैं कि सात्विक जीवन व्यतीत करने के लिए भोजन का त्याग या उसका ह्रास अत्यन्त आवश्यक है। कभी वे अन्न छोड़कर फल खाने लगते हैं तो कभी जल, वायु पर जीवित रहने का यत्न करते हैं। यह तो सात्विक भोजन नहीं है। भगवद्गीता में कहा है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यं, सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाःस्थिराः हृद्याः, आहाराः सात्तिवकप्रियाः ॥

—गीता २७।८

आयु, बुद्धि, बल, नीरोगता, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले रस-युक्त, चिकने, स्थिर और मन को भाने वाले आहार सात्विक कहलाते हैं। आयुर्वेद में कहा है—

पथ्ये सति गदार्तस्य, किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य, किमौषधनिषेवणैः॥

यदि मनुष्य पथ्य (परहेज) से रहे तो दवा की आवश्यकता ही न होगी और यदि पथ्य का पालन न करे तो दवायें उसका क्या बना सकेंगी? दवाएँ व्यर्थ जायेंगी और उसका रोग छूटेगा नहीं। आध्यात्मिक पथ्य क्या है? सादा और सात्विक जीवन ही असली पथ्य है। सादा और सात्विक जीवन क्या है, यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि प्रायः लोग इसमें भ्रान्ति के शिकार हो जाते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र के निर्माता महर्षि चरक ने चिड़ियों की बोली में कहा—

कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक् इस संसार में कौन निरोग रहता है, कौन निरोग रहता है, कौन निरोग रहता है।

उत्तर मिला—हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्।

जो हितकारी भोजन करता है, आवश्यकता अनुसार थोड़ा खाता है तथा ऋतु अनुसार भोजन करता है। वही निरोग रहता है, वही निरोग रहता है, वही निरोग रहता है। **"व्यायामी पथ्याशी स्त्रीषु जितात्मा न रोगी स्यात्"** व्यायामी, संयमी तथा पथ्य-भक्ष्याभक्ष्य का विचार करनेवाला कभी बीमार नहीं होता।

सात्त्विक भोजन मनुष्य को संयमी बनाकर दोषचतुष्टय (काम, क्रोध, लोभ और मोह) से बचाता है, राजस भोजन उसे दोषों की ओर प्रवृत्ति करता है और तामस भोजन उसे दोषों के सागर में डुबो देता है। इस कारण दोषों से उत्पन्न होने वाले दुःखों से बचने के लिए मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह उत्तम और उचित आहार किया करे। आहार के बारे में आयुर्वेद का निम्नलिखित निर्देश सदा स्मरण रखने और व्यवहार में लाने योग्य है—

हिताशी स्याद् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्तु॥

बुद्धिमान का कर्त्तव्य है कि विषम आहार से नाना प्रकार के रोगों तथा कष्टों को देखता हुआ, सदा हितकर और परिमित आहार का सेवन करने वाला बने, और हमेशा ठीक समय पर अर्थात् भूख लगने पर ही भोजन करे, तथा सदा संयमी और जितेन्द्रिय रहे।

जो अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की इच्छा रखता हो उसे चार सुनहरे नियमों का पालन करना चाहिए—

१. हिताशी हो। जो शरीर को, स्वास्थ्य को बल देने वाला हो, ऐसा भोजन करे।

२. मिताशी हो। भूख से अधिक कभी न खाये, कुछ कम ही खाये तो अच्छा है।

३. कालभोजी हो। नियत समय पर भोजन करे। अच्छे से अच्छा भोजन भी यदि मात्रा से अधिक किया जाए अथवा नियत समय से पहिले या समय बिता कर किया जाय तो शरीर के लिए हानिकारक है।

४. जितेन्द्रिय हो। खाने में चटोरा न बने। किसी वस्तु को स्वाद के लिए नहीं अपितु शरीर की पुष्टि और रक्षा के लिए

भोजन योग्य समझे। केवल स्वाद के लिए अधिक किया हुआ भोजन स्वास्थ्य के लिए विष सिद्ध होता है।

भोजन विज्ञान के पौरस्त्य और पाश्चात्य, तथा प्राचीन और अर्वाचीन विशेषज्ञों के बहुमत को दृष्टि में रखकर हम उत्तम, मध्यम और अधम भोज्य पदार्थों की निम्नलिखित निर्देशक सूची बना सकते हैं—

उत्तम भोजन—जल, दूध, अन्न (गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा आदि) दाल (अरहर, उड़द, मूँग आदि) फली (फराशबीन, सोयाबीन आदि) सब्जी, फल, मेंवा, शहद।

मध्यम भोजन—तले हुए पदार्थ, मिठाई, मिर्च मसाला, अचार आदि।

अधम भोजन—मांस, मद्य, गरम मसाले आदि।

अच्छे अनुकूल और परिमित भोज की बड़ी महिमा है। रोगों की निवृत्ति का मुख्य उपाय वही है। कई लोग बकरी की तरह दिन भर कुछ न कुछ चबाते ही रहते हैं। ऐसे आदमी कभी भी स्वस्थ और सुडौल नहीं बन सकते। ऐसा मनुष्य तो लकड़ी के समान सूखकर सदा बाबू 'लकरीचन्द' ही बने रहते हैं। एक कहावत भी है—

खावे बकरी की तरह।
सूखे लकड़ी की तरह॥

अधिक व तामसिक भोजन करने वाला सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन मध्याह्न से आधा होना चाहिये तथा सोने से दो या तीन घण्टे पूर्व ही भोजन करना चाहिए। दुग्ध तथा जलपान भी सोने से दो वा तीन घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिए। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। आयुर्वेद के ग्रन्थों में कहा है—

आहिताग्निः सदा पथ्यानन्तराग्नौ जुहोति यः।
भजन्ते नामयाः केचिन् ॥

अर्थात्—जो सच्चा याजक बनकर अपनी जठराग्नि रूपी यज्ञाग्नि में सदा हितकर पदार्थों की ही हवि प्रदान करता है उसे किसी भी प्रकार के रोग नहीं सताते। पुनः चरक ग्रन्थ में लिखा है—

ज्ञानं तपः तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुतपन्ति रोगाः।

अर्थात्—जो मनुष्य ज्ञानवान्, विचारशील और बुद्धिमान है, जो तपस्वी व संयमी है और जो प्राणायाम आदि योगाभ्यास में सदा तत्पर रहता है, उसको कभी भी रोग नहीं सताते। उपनिषदें भी कहती हैं—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्

अर्थात्—जो मनुष्य योगाभ्यास द्वारा अपने शरीर को योगाग्निमय बना लेता है उसे न रोग होते हैं, न बुढ़ापा आता है और न ही जल्दी वह मृत्यु को प्राप्त होता है।

स्वस्थ शरीर

समदोषः समाग्निश्च समधतुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥ —सुश्रुत

जिस मनुष्य के वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष सम अवस्था में हों, जिसकी जठराग्नि न अधिक तेज, न अधिक मन्द हो, जिसकी रस रक्तादि सप्त-धातुयें समुचित मात्रा में बनती हों तथा शरीर में स्थिर रहती हों, जिसकी मल-मूत्रादि की क्रिया ठीक होती हो और जिसकी दशों इन्द्रियाँ कार्य करने में सक्षम हों तथा मन और आत्मा प्रसन्न हों, वही व्यक्ति स्वस्थ होता है।

नाथ सम्प्रदाय के बालकनाथ ने भी आहार, आसन और निद्रा के विषय में कहा है—

आहार दृढ़ आसन दृढ़ जे दृढ़ निद्रा होय।
नाथ कहे रे बालका मरे न बूढ़ा होय॥

इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है—

कम खाना और खूब चबाना।
यही है तंदुरुस्ती का खजाना॥

प्रायः लोग आहार, व्यवहार, आचार की चोरी करते रहते हैं। इससे बचना चाहिये। मिल-बाँट के खाने में आनन्द आता है।

क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम् श्रेष्ठतमः।

आयुर्वेद के मतानुसार शरीर को परिपुष्ट और एक प्रकार से नया बना देने वाले रसायन तत्त्वों में दूध और घी सर्वश्रेष्ठ है। दूध में शरीर की क्षतिपूर्ति करके रस-रक्तादि धातुओं की विवर्द्धित कर अङ्ग-प्रत्यङ्ग का विकास करने वाले तत्त्व प्रभूत मात्रा में होते हैं।

आयुर्वेद में हितकर भोजन को हिताशन, नियत समय के भोजन को नियताशन, उचित मात्रा में भोजन को मिताशन कहा जाता है। इसी प्रकार असात्म्य भोजन को अहिताशंन, असमय खाने को विषमाशन और अधिक भोजन को अध्यशन कहते हैं। भोजन में इस सब का ध्यान रखना चाहिए।

एक बार ईरान के बादशाह वहमन ने एक वैद्य से पूछा, दिन-रात में मनुष्य को कितनी खाना चाहिये? उत्तर—सौ दिरम अर्थात् ३९ तोला, फिर पूछा—इतने से क्या होगा? हकीम बोला—शरीर पोषण के लिये इससे अधिक नहीं चाहिये, इसके उपरान्त जो कुछ खाया जाता है वह सिर्फ बोझ ढोना और उम्र को खोना है। महर्षि मनु लिखते हैं—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चाति भोजनम्।
अपुण्यं लोकं विद्विष्टं तस्मातत्परिवर्जयेत्॥

—मनु० २।५७

अति भोजन करने से स्वास्थ्य हानि तथा रोगों की वृद्धि होती है, आयु घटती है, व्याधि आदि के कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पुण्य का नाश और पाप की वृद्धि होती है, और अधिक खाने वाले की जग हँसाई होती है। ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। पेट ठोक-ठोककर अधिक भोजन करने वाला सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। योगी ब्रह्मचारी की कहावत है कि—योगी एक बार शौच को जाता है, भोगी दो बार जाता है। रोगी अनेक बार जाता है। इस सत्य वाक्य को ब्रह्मचारी को चरित्रार्थ करना चाहिये।

दूसरा उपस्तम्भ

निद्रा

निद्रा अर्थात् पूर्ण विश्राम उत्तम स्वास्थ्य और सशक्त शरीर-विकास के लिए अनिवार्य तीन उपस्तम्भों में दूसरा स्थान निद्रा अर्थात् विश्राम का है। वस्तुतः निद्रा किसे कहते हैं? यह समझने की बात है। जिस अवस्था में शरीर की अन्य सब इन्द्रियाँ शान्त हो, किन्तु मन कार्यरत हो, उसे 'स्वप्न' कहते हैं और जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा मन भी काम में न लगा हो उस अवस्था को निद्रा कहते हैं, इस प्रकार मन सहित इन्द्रियों का पूर्ण विश्राम लेना ही निद्रा है। स्वास्थ्य काम करने, उठने-बैठने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने, यहाँ तक कि कुछ सोचने-विचारने में भी शरीर और मन की शक्ति खर्च होकर क्षीण होती है। शरीर के घटकों और रस-रक्तादि धातुओं की इस निरन्तर होने वाली कमी को पूरा करने के लिए प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि आहार और निद्रा से काम में क्षय हुई शारीरिक और मानसिक शक्तियों की पूर्ति होती रहे और नयी स्फूर्ति मिलती रहे।

इस सत्य का हम सदा अनुभव भी करते हैं कि भोजन से हमें शक्ति प्राप्त होती और नींद से मन और मस्तिष्क को ताजगी तथा प्रेरणा मिलती है।

उचित आहार मिलने पर भी यदि नींद नहीं आती तो शरीर का स्वास्थ्य तथा मन गड़बड़ा जाता है। चूँकि नींद थके हुए मन और मस्तिष्क को ताजगी देनेवाली है, अतः मोटर के इंजिन का उदाहरण इसके लिये अधिक उपयुक्त होगा। कुशल, समझदार ड्राइबर २०-३० मील के सफर के बाद इंजिन की गर्मी को दूर करने के लिए, ५-७ मिनट का उसे विश्राम देना जरूरी समझता है। इस जरा-से विश्राम से ही इंजिन की अनावश्यक गर्मी शान्त होकर मशीन को नई ताकत मिल जाती है। इससे वह इंजिन काम भी ज्यादा समय तक देता है और जल्द खराब भी नहीं होता। किन्तु जो ड्राइवर ऐसा नहीं करते, बीच-बीच में इंजिन को विश्राम

नहीं देते, उनकी मशीन जल्द ही अपना जीवन समाप्त कर देती है और बार-बार उसे सफाई तथा मरम्मत के लिये भेजना पड़ता है। जब कि एक निर्जीव यन्त्र के लिये इतनी सावधानी, इतने विश्राम की आवश्यकता है, तब मानव-शरीर तो एक सजीव यन्त्र है, जिसे काम करने के साथ-साथ सोचना भी पड़ता है।

यदा तु मनसि क्लांते कर्मात्मानःक्लमान्वितः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

—चरक

अर्थात्—अन्तःकरण और मन के थक जाने पर जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय कार्यों से विमुख हो जाती हैं, तब निद्रा आकर उन्हें पुनर्जीवित कर देती है।

नींद से सुख और शान्ति

'निद्रायत्तं सुखम' (निद्रा पर सुख निर्भर है), महर्षि चरक का यह कथन पूर्णरूप से सत्य है। शरीर और मन के निर्विकार रहने पर ही जीवन-यापन का सुख अवलम्बित है, और इसके लिए नींद एक प्रधान साधन है। सुखी जीवन में शान्ति रहती है, सुख के पास ही सत्य, शिव और सौन्दर्य का निर्वाह है। अतः 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की दृष्टि से भी नींद एक प्रधान वस्तु है।

नींद से बच्चों का विकास

शरीर-शास्त्रियों का यह विश्वास है कि बच्चों के शरीर की वृद्धि नींद से ही होती है। माता के अमृतोपम दूध से बच्चे का जितना विकास होता है। उतना ही नींद से भी। स्वस्थ बच्चे प्रायः सोते ही रहते हैं। जन्म काल के बाद शुरू-शुरू में तो उनकी नींद २०-२२ घण्टे तक रहती है और जिस अवस्था तक उनका विकास होता है, उस अवस्था तक उन्हें अधिक मात्रा में नींद आती है। कोमल अङ्गों का विकास नींद बड़ी सफलता से करती रहती है और जब कभी बच्चे की नींद गड़बड़ा जाती है, तभी उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है।

नींद से रोग-शान्ति

सभी कुशल चिकित्सक अपने रोगी के हित के लिए नींद लाने का उपाय करते हैं। रोगी को नींद का आना एक शुभ चिह्न इसीलिए तो माना जाता है कि इससे रोगी के मस्तिष्क पर छाया

हुआ रोग का आवरण दूर होकर, उसे नई जीवन-शक्ति प्राप्त होती है।

नींद के द्वारा रोगाणुओं का असर दूर होता है और शरीर की प्राकृतिक रोग-क्षेम-शक्ति को बल मिलता है। सन्निपात, गठिया, उन्माद जैसे कठिन रोगों में रोगी को नींद लाने का प्रत्यक्ष प्रभाव इस रूप में सामने आता है कि थोड़ी नींद आने से ही रोग का प्रकोप कम हो जाता है। उन्माद, कामज्वर जैसे रोगों के लिए तो एकमात्र औषधि नींद ही है। उचित समय पर, उचित नींद का आना, इस बात का भी सूचक होता है कि शरीर अब रोग के प्रभाव से मुक्त होकर नीरोग दशा को प्राप्त हो रहा है।

नींद से जख्म भरता है

महायुद्ध के दिनों में वैज्ञानिकों को इस आयुर्वेदिक सत्य का पता चला कि नींद से मांस बढ़ता है—और मांस बढ़ता है, इसलिए जख्म भी भरते हैं। अब जो जख्म भरनेवाली दवाओं में नींद भी एक दवा के रूप में ही शामिल हो गई है। जंगली जानवरों के जख्म प्रकृति और नींद के द्वारा ही भरते हैं, इस तथ्य से भी वैज्ञानिकों की इस धारणा को पुष्ट किया है। दुर्बल-पतले शरीर को मोटा-ताजा बनाने के लिये आयुर्वेद में यह स्पष्ट निर्देश है कि ऐसे व्यक्ति को ....आहार के साथ पर्याप्त नींद का सेवन करना चाहिए। दिन-रात आँखों के सामने आनेवाले मेदस्वी—मोटे-थुलथुल—स्त्री-पुरुषों के मुटापे के कारणों को खोज करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि माल-मलीदे खाने, आराम से पड़े रहने के अलावा ज्यादा सोना भी उनके मुटापे का एक खास कारण है। और इस व्यक्ति को पुष्ट बनाने में नींद एक खास कारगर उपाय है।

नींद के तीन रूप

आयुर्वेद में नींद के तीन रूप बताये गये हैं—

१. **तामसी** या तमोभवा निद्रा।

२. **आगन्तुकी** अथवा रोग या आघात या नशे की नींद।

३. **भूतधात्री** या स्वाभाविक निद्रा।

इनमें पहली तामसी नींद मन-शरीर के थकने पर कफ के द्वारा प्राप्त होती है। दूसरी **आगन्तुकी** नींद सन्निपात जैसे रोग,

मस्तिष्क में चोट लगने या नशीली पदार्थों के सेवन से आती है। तीसरी **भूतधात्री** जीवों का कल्याण करने वाली, रात्रि की स्वाभाविक नींद होती है।

स्वाभाविक नींद शरीर के लिए पोषक और अत्यन्त हितकर है। आगन्तुकी नींद स्वयं एक रोग है और तामसी नींद मन और इन्द्रियों के थकने पर आनेवाली निद्रा है, जो जीवों को स्वास्थ्य और शान्ति प्रदान करती है। इसी तरह **तामसी, वैष्णवी** और **सात्त्विकी** के नाम से भी नींद के तीन रूप बताये गये हैं।

इसलिए चरक में कहा गया है—

निद्रायतं सुखं दुखं पुष्टि कार्श्यं बलाबलम्।

अर्थात् सुख और दुःख पुष्टि और कृशता, बल और अबल निद्रा के अधीन है।

इसीलिए आयुर्वेद में कहा है—

अकालेऽति प्रसंगाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा॥

—चरक संहिता

अर्थात्—सुख चाहने वाले व्यक्ति अकाल शयन, अधिक शयन, और अत्यन्त शयन त्याग दें। क्योंकि यह निद्रा सुख और जीवन को नया कर देती है, जैसे काल रात्रि जीवन को नया कर देती है।

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुवा।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्या बुद्धिरिवागता॥

उचित रूप में सेवन की गई नींद उसी प्रकार सुख और जीवन देती है, जिस प्रकार यथार्थ सिद्धि से योगी को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है।

स्वाभाविक सुख निद्रा के लिए संयम का अभ्यास अत्यन्त हितकारक है। वाग्भट का कथन है—

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्य सुख निस्पृह चेतसः।
निद्रा सन्तोष तृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, मैथुन से उदासीन और सन्तोष से सन्तुष्ट व्यक्ति को नियत समय पर बिना किसी प्रयत्न के आनन्ददायिनी निद्रा अपने आप आ जाती है।

तीसरा उपस्तम्भ

ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम

आहार और निद्रा के बाद पूर्ण स्वास्थ्य का तीसरा आधार ब्रह्मचर्य (संयम) है।

आयुर्वेदोक्त स्वास्थ्य-प्रसंग में ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह नहीं है कि कामवासना का एकदम ही दमन कर दिया जाय। स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से कामवासना का उचित और सम्यक् उपयोग भी ब्रह्मचर्य ही माना जाता है। कामवासना की अति सर्वथा ही स्वास्थ्य का नाश करनेवाली है।

महर्षि दयानन्दजी ब्रह्मचर्य के विषय में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में महाभारत का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्व रेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥ १॥

—महा० अनु० पर्व० अ० ७५, श्लोक ३८

जो सदा सत्याचार में प्रवृत, जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अध:स्खलित कभी न हो उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं॥ १॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्य्यमेकान्तनिर्मलम्॥ २॥

ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तथा पवित्र है। यह ब्रह्मचर्य ही यश की आयु की तथा धर्म की प्राप्ति कराने वाला है यह दोनों लोकों के लिये रसायन हैं इसलिए हम इसी का अनुमोदन करते हैं॥ २॥

ब्रह्मचर्य्यं परं शौचं ब्रह्मचर्य्यं परन्तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणास्ते दिवं गताः॥ ३॥

ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ परम पवित्र है, और ब्रह्मचर्य ही परम तप है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं यह मरकर मोक्ष

को प्राप्त करते हैं॥ ३॥

समुद्रतरणे यद्वदुपायो नौः प्रकीर्तिता।
संसारतरणे तद्वद्ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्॥ ४॥

जैसे समुद्र को पार करने के लिये नौका ही सब से श्रेष्ठ उपाय है उसी प्रकार इस संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिये ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ उपाय है॥ ४॥

नीरोगः कान्तिसम्पन्नः सर्वदुःखविवर्जितः।
ब्रह्मचारी भवेल्लोके पाप्मना च विवर्जितः॥ ५॥

जो ब्रह्मचारी होता है वह नीरोग रहता है कान्ति से सम्पन्न रहता है और सब दुःखों से दूर रहता है। इस संसार में सदा पाप कर्मों से दूर रहता है॥ ५॥

किं बहूक्तेन लोकेऽस्मिन्साधनं यद्धिविद्यते।
ब्रह्मचर्ये तु तत्सर्वमन्तर्भवति सर्वथा॥ ६॥

अधिक बतलाने से क्या लाभ है इस संसार में सुख पाने के जो भी साधन हैं उन सब से श्रेष्ठ परम साधन ब्रह्मचर्य ही है और सब साधन भी इसी में समा जाते हैं॥ ६॥

यथा गजपदे सर्वे पादा अन्तर्भवन्ति हि।
नैतस्मादधिकं किञ्चिद् ब्रह्मचर्याद्धि विद्यते॥ ७॥

इस ब्रह्मचर्य से बढ़कर इस संसार में कोई भी साधन नहीं है इस से उत्तम कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है जैसे हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं इसी तरह सब साधन इसी में समा जाते हैं॥ ७॥

सर्वसाधनसम्पन्ना ब्रह्मचर्यविवर्जिताः।
क्लेशं हि मुनयो भेजुर्विद्वांसोऽपि च कोटिशः॥ ८॥

जो विद्वान् तथा मुनि सर्व प्रकार के साधनों से युक्त थे और ब्रह्मचर्य से वे रहित थे तो ऐसे करोड़ों विद्वानों ने तथा मुनियों ने कष्ट ही प्राप्त किया। ब्रह्मचर्य रहित होने से कष्ट में ही रहे सुख प्राप्त न हुआ॥ १०॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ ९॥

मन से वाणी से तथा कर्म से सर्वथा सभी अवस्थाओं में तथा सर्वत्र ही मैथुनों का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। अष्ट प्रकार के मैथुनों का हर अवस्था में सदा त्याग करना ही ब्रह्मचर्य माना जाता है॥ ९॥

आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह।
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप॥ १०॥

इस संसार में जो मनुष्य जन्म से लेके मृत्यु पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन ब्रह्मचारियों के लिये कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं होती। वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं॥ १०॥

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारा ब्रह्मचारिणः।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥ ११॥

जो कुमार ब्रह्मचारी है, और जो तपस्या करने वाले हैं, तथा जो विद्या के वेद के और व्रत के स्नातक हैं, वह सम्पूर्ण दुःसह दुःखों को पार कर जाते हैं। उन्हें कोई दुःख नहीं होता॥ ११॥

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं पर्य्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति॥ १२॥

जो संयमी पुरुष है, वह सुख से सोता है तथा सुखपूर्वक ही प्रातः उठता है। सुखपूर्वक सब लोकों में घूमता है। इसका मन प्रसन्न रहता है॥ १२॥

अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते।
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्॥ १३॥

जो पुरुष अदान्त है, इन्द्रियाँ वश में नहीं रखता है वह सदा बड़े-बड़े दुःखों को भोगता रहता है। और बहुत-से आत्मा के दोष से पैदा हुए अनर्थों का करने वाला होकर दुःख ही पाता रहता है॥ १३॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ १४॥

इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे सदा विषयों की तरफ दौड़ती हैं उन विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों को विद्वान् यत्न करके इस प्रकार संयम में रखे जिस प्रकार अच्छा सारथी घोड़ों को रखता है॥ १४॥

आपदां कथितः पंथाइन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गों येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ १५ ॥

इन्द्रियों का संयम न करना उन्हें खुली छोड़े रखना यह मार्ग आपत्ति का बताया है। और इन्द्रियों का दमन करके उन्हें वश में रखना यह मार्ग सम्पत्तियों का सुख देने वाला बताया है। जो अच्छा हो उसी पर चलना चाहिये॥ १५ ॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ १६ ॥

जो मनुष्य धर्म का और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के पीछे ही चलता है उनके वश में रहता है। वह जल्दी ही लक्ष्मी प्राणों, धन और स्त्री से रहित हो जाता है॥ १६ ॥

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षये ह्यस्य बहून्दोषान्मरणं चाधिगच्छति॥ १७ ॥

इस हमारे भोजन का शुक्र ही एक मुख्य अंश है इसकी प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि इसके नष्ट करने से मनुष्य बहुत से दोषों को यहाँ तक कि मृत्यु को भी प्राप्त करता है॥ १७ ॥

विमर्श—

ब्रह्मचारी के लिये निम्न वस्तुयें अनिवार्य है—ब्रह्मचारी को कौपीनवन्तं खलु भाग्वन्तः के अनुसार कौपीन लंगोट अवश्य धारण करना चाहिये, इसके साथ ही मेखला का भी प्रयोग करें। कौपीन-मेखला और संयम, ब्रह्मचर्य का सन्देश देता है।

वैराग्य

मैंने एक दिन सड़क पर बुढ़ी अत्यन्त दुर्बल गोमाता को गोबर निकलते हुए कष्ट के साथ पोक-पोक करते देखा। इसी प्रकार एक कुत्ते और कुतिया को देखा, पुनः बहुत कष्टदायक आश्रमों में वृद्धों को देखकर मैं ब्र० नन्दकिशोर डर गया और विचार करने लगा कि इसका उपाय एक ही है ब्रह्मचर्य के अनुसार जीवन को सुरक्षित रखना।

वीर्य-रक्षा

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥

—अथर्व० ११।५।४

हम अब प्रलोभन को जीतना सीख चुके हैं। इसके कारण हमें बहुत बल प्राप्त होगा। आइये, इस नये बल को प्राप्त करके अबकी बार ब्रह्मचर्य के महान् गुण को अपने में धारण करने का यत्न करें। ऋषि दयानन्द के जीवन से हमें ब्रह्मचर्य की ही सबसे बड़ी शिक्षा मिलती है। ऋषि दयानन्द में ब्रह्मचर्य की महिमा ऐसी प्रकट हुई है कि उनकी ब्रह्मचर्य-शक्ति ही उन्हें और अन्य सब सुधारकों से अलग करती है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है वीर्यरक्षा। ब्रह्मचर्य का असली अर्थ इससे अधिक विस्तृत है, परन्तु हम अभी इसका वीर्यरक्षा, ऐसा ही मुख्य अर्थ लेकर आगे चलेंगे। वीर्यरक्षण करना ही काफी कठिन काम है, परन्तु इसका महत्त्व और लाभ भी उतना ही अधिक है। वीर्य वह वस्तु है जो कि सम्पूर्ण शरीर का सारांश है, तेजस्सार है। वीर्य के एक कण में बहुत-से जीवनों को उत्पन्न करने की शक्ति है। तब आप कल्पना कर सकते हैं कि वीर्य कितना जीवन का भण्डार है। यदि यह शरीर में रक्षित किया जावे तो हममें कितनी जीवन-शक्ति संचित हो सकती है! स्वामी दयानन्द ने जगत् में आकर जो इतना महान् कार्य किया, भारी अज्ञान को हटाया, बहुत-से जीवनों को पलटा, सत्य का डंका बजाया, और अपने जमाने को ही बदल दिया, इनका यदि कोई भौतिक कारण ढूँढा जाय तो वह उनके शरीर में रक्षित किया हुआ वीर्य था। क्या हम आर्यसमाजियों की यह इच्छा नहीं होती कि हम भी वीर्य-रक्षा करें? नष्ट होती हुई इस ईश्वर-प्रदत्त शक्ति को रक्षित करें? जिसको यह इच्छा पैदा होती होगी वह तो अपनी इस वीर्यरूपी अनमोल सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए विकट-से-विकट यत्न और सब प्रकार का परिश्रम करने के लिए अवश्य एकदम उद्यत होगा। आप पूछेंगे कि हम वीर्य की रक्षा

कैसे करें, यह बड़ा कठिन काम है। बेशक यह कठिन काम है, परन्तु इसके उपाय भी जरूर हैं। और जिस सौभाग्यशाली पुरुष को वीर्य-रक्षण की उत्कट इच्छा हुई है वह उन उपायों को जरूर कहीं-न-कहीं से प्राप्त भी कर लेगा। वीर्य-रक्षण की इच्छा रखनेवालों को चिन्ता की कोई जरूरत नहीं है, विशेषकर जबकि उसने प्रलोभनों को जीतने का अभ्यास कर लिया है। वीर्य-रक्षा के लिए आहार, विहार, व्यायाम आदि कैसा होना चाहिए और मनोऽवस्था कैसी रखनी चाहिए, इत्यादि विषय को हम इस लेख में नहीं देख सकेंगे। इन बातों के सम्बन्ध में पाठकगण ब्रह्मचर्य विषय पर विस्तृत लिखी हुई पुस्तकों का स्वाध्याय करके अवश्य लाभ उठावें। परन्तु यहाँ ब्रह्मचर्य के उस एक साधन का हम विचार करेंगे जो कि मेरी समझ में मौलिक साधन है। यह साधन स्वाभाविक है, अतएव प्रबल है। इस साधन के प्राप्त हो जाने पर स्वभावतः वीर्य-रक्षा होती है और अवश्य होती है। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि इसी साधन से सम्पन्न होने के कारण ही स्वामी दयानन्द अखण्ड ब्रह्मचारी रहे थे। यह साधन एक वाक्य में यह है—**वीर्य को किसी शक्ति के रूप में परिणित करना।** बिना ऐसा किये वीर्य का सँभालना कठिन है। जब तक हम वीर्य को शक्ति के रूप में नहीं ले आते, तब तक वीर्य के नाश होने की पूरी सम्भावना रहती है। इसलिए वीर्य को वीर्य के रूप में न पड़े रखकर उसको शक्ति बना देना ही वीर्य-रक्षा का मौलिक उपाय है। वीर्य को शक्ति के रूप में किन उपायों से परिणित करें, अथर्ववेद में प्रसिद्ध ब्रह्मचर्य सूक्त है। उसमें ब्रह्मचर्य के विषय में बड़े-बड़े उत्तम उपदेश हैं, परन्तु उस सूक्त में से मैं एक मन्त्र के उत्तरार्ध को ही उपस्थित करता हूँ। उससे ही उपदेश ग्रहण करना हमारे लिए बहुत पर्याप्त होगा। वह मन्त्र यह है—

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥

—अथर्व० ११।५।४

इस मन्त्र में कहा है "**ब्रह्मचारी लोकान् पिपर्ति**"—ब्रह्मचारी लोकों को पूर्ण करता है और पालित करता है। कैसे? "**समिधा, मेखलया, श्रमेण, तपसा**"—'समिधा से, मेखला से, श्रम से, तप से—इन चार साधनों से।'

यह चारों वीर्य-रक्षा के भी साधन हैं, क्योंकि ये चारों ही वीर्य को शक्ति के रूप में परिणत करने के उपाय हैं। इनमें से पहला उपाय है **समिध्**। समिध् का अर्थ है अच्छी प्रकार से दीप्त होना—सं+इन्ध। हवन की लकड़ियों को भी समिध् इसीलिए कहते हैं क्योंकि वे दीप्त होती हैं। आर्यों में पुरानी प्रथा के अनुसार शिष्य गुरु के पास समिधा लेकर जाता था। उसका मतलब यह था कि मानो गुरु अग्निरूप है और शिष्य अपने-आपको समिधा बनाता है और इच्छा करता है कि मुझे आप इसी तरह दीप्त कर दो जैसे कि अग्नि में समिधा डालने से वह समिधा भी अग्निवत् दीप्त हो जाती है। इस प्रकार से यदि आप विचारेंगे तो आप समझ जायेंगे कि यहाँ पर समिध् का अर्थ **''अपने-आपको ज्ञानाग्नि से दीप्त करना''** है। अपने को ज्ञान से दीप्त करने से हमारा वीर्य ज्ञान के बनाने में खर्च होगा और इस प्रकार वीर्य-रक्षा होगी। इस 'समिध्' की बात को यदि आप पूरी तरह समझना चाहें तो आप अपने सामने दीपक का दृश्य लाइये। स्वामी रामतीर्थजी ने अपने प्रसिद्ध 'ब्रह्मचर्य' के व्याख्यान में यह बड़ी उत्तम उपमा दी है। यह उपमा मुझे तब से याद रहती है। दीपक आपमें से हरएक ने जलते देखा है। उसमें तेल होता है, बत्ती होती है और ऊपर से वह जलता है—प्रकाशित होता है, अर्थात् तेल ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है—प्रकाश बन जाता है। आप समझ गये होंगे कि तेल के स्थान में हमारे शरीर में वीर्य है। यदि हम अपने-आपको ऊपर से जला दें, अपने-आपको दीप्त कर लें, तो हमारा वीर्य भी ऊपर चढ़कर ज्ञान बनने में खर्च हुआ करेगा। हमारे सिर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वहीं ज्ञान का केन्द्र दिमाग है। लोकों के हिसाब से सिर हमारा द्युलोक है। इसी सिर को हमने दीप्त करना है, जलाना है। इसकी दीप्ति ज्ञान से होती है। जब हमारा सिर ज्ञान से जलने लगेगा तब हमारा वीर्य स्वयंमेव वहाँ चढ़ेगा और ज्ञानरूप प्रकाश में परिणत हुआ करेगा। इस प्रसंग में पाठक ऊर्ध्वरेता होने का भाव भी समझ गये होंगे। जो योगी-महात्मा होते हैं उनका सिर इसी कारण द्युलोक की तरह देदीप्यमान होता है। वे सिर में प्राण भरकर समाधि करते हैं और 'ऋतम्भरा' जैसी अत्युच्च ज्ञान-प्रकाश की अवस्था को प्राप्त करते हैं, अतएव

उनका सर्ववीर्य ऊर्ध्वगामी होकर ज्ञान-प्रकाश का ईंधन बनता रहता है। हम साधारण पुरुष यदि समाधि नहीं प्राप्त कर सकते तो हमें अन्य प्रकार से मस्तिष्क को कार्य देना चाहिए, खूब मनन करना चाहिए, गम्भीर विचार करना चाहिए, मस्तिष्क से खूब काम लेना चाहिए, इस प्रकार से हमारा वीर्य भी बहुत कुछ ज्ञानाग्नि का ईंधन बन सकता है और वीर्य-रक्षा हो सकती है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हरएक वस्तु की तरह वीर्य की भी दो गति हो सकती हैं, एक ऊर्ध्वगति और दूसरी अधोगति। जो लोग वीर्य-जैसी परम पवित्र और जीवन-भण्डार वस्तु की अधोगति करते हैं, उनकी अधोगति ही होती है। और जो मनुष्य अपने अन्दर इसकी ऊर्ध्वगति करते हैं, वे स्वभावतः ऊर्ध्वगति, उन्नति को प्राप्त होते जाते हैं। जितनी मात्रा में ऊर्ध्वगति करते हैं उतनी ही मात्रा में उन्नति को प्राप्त होते हैं। अतः अपने को ज्ञान से दीप्त कर पूरे यत्न से जहाँ तक हो सके वहाँ तक हमें वीर्य की ऊर्ध्वगति ही प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार 'समिधा' द्वारा हम मूलतया वीर्यरक्षा करते हैं। यह पहला उपाय हमें वेद ने दर्शाया है।

दूसरा उपाय है **मेखला**। मेखला को हिन्दी में तडागी या तगडी कहते हैं। स्मृति-ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए कटिप्रदेश में मेखला बाँधने का विधान है। इसका वास्तविक प्रयोजन क्या है—यह मैं ठीक नहीं जानता। ऐसा सुना जाता है कि यह वीर्य-रक्षा में सहायक होती है, और अण्डकोषों के कई रोगों के लिए रक्षक का काम देती है। परन्तु इससे एक और भाव समझ में आता है, यह है **कटिबद्धता** का भाव। ब्रह्मचारी को कटिबद्ध रहना चाहिए, हमेशा तैयार—हमेशा चुस्त रहना चाहिए, न जाने कर्त्तव्य किस समय क्या आज्ञा देवे। जिस प्रकार युद्ध का सिपाही हमेशा चुस्त और चौकन्ना रहता है कि न जाने अभी क्या करना पड़े, उसी तरह ब्रह्मचारी को कर्त्तव्य के लिए कमर कसे हुए सदा तैयार रहना चाहिए। उसे हमेशा जागृत रहना चाहिए, सोते हुए भी जागृत रहना चाहिए, कभी भी प्रमादी-आलस्ययुक्त नहीं रहना चाहिए। कटिबद्धता से उल्टा है आलस्य, ढीलापन। जब मनुष्य आलसी होता है, ढीला पड़ा रहता है, तब उसके

वीर्यनाश होने की सदा सम्भावना रहती है। सोते हुए का ही वीर्यनाश होता है। इससे विपरीत जब मनुष्य सदा कर्त्तव्योन्मुख होकर चुस्त रहता है, तब इस कार्य में जो शक्ति खर्च होती है उसे शरीरस्थ वीर्य पूरा करता है, अर्थात् वीर्य इस शक्ति में परिणत होता रहता है। यह वीर्य-रक्षा का दूसरा साधन है। वीर्य को शक्ति में परिणत करने का प्रारम्भ में विवेचन अच्छी तरह हो चुका है। इसलिए अब उसकी विस्तृत व्याख्या की जरूरत नहीं।

तीसरा साधन है श्रम, परिश्रम, मेहनत। यह साफ बात है कि श्रम करने से वीर्य-रक्षा होती है और श्रम से विपरीत **आरामतलबी** से—आराम की इच्छा से—वीर्यनाश होता है। अतः ब्रह्मचर्य की इच्छा करनेवालों को सदा श्रम करना चाहिए। शारीरिक श्रम, व्यायाम से वीर्य रुधिर में सम्मिश्रित होता है। एवं अन्य मेहनत के कार्य करने से भी वीर्य शक्ति के रूप में खर्च होता है। अतः हमें श्रम के जीवन को बड़ी खुशी से अपनाना चाहिए।

इसके बाद चौथा साधन **तप** का आता है। यह एक प्रकार से सबसे मुख्य है। ब्रह्मचर्य सूक्त में तप का बार-बार वर्णन आता है। द्वन्द्वों के सहने को तप कहते हैं। अपने कर्त्तव्य-मार्ग में जो कष्ट आवें उन्हें सहना तप है। यह ब्रह्मचारी को निरन्तर करना चाहिए। गर्मी-सर्दी एवं भूख-प्यास सहने का उसे अभ्यास होना चाहिए। इसी प्रकार और नाना तरह के द्वन्द्व हैं जिन्हें कि मनुष्य जितना सहने वाला होगा उतना ही वह वीर्य-रक्षक होगा। उदाहरणार्थ हम शीतोष्ण को सहें, शीत को कपड़े द्वारा सहना छोड़कर धीरे-धीरे यह अभ्यास करें कि अपने वीर्य से बननेवाली शरीरस्थ सहन-शक्ति के द्वारा ही शीत को सह सकें, और गर्मी को भी बाह्य उपकरणों से न सहकर इसी सहन-शक्ति से सहने का अभ्यास करें तो हमारी वीर्यरक्षा होगी। वीर्य का इस प्रकार बहुत उत्तम सद्व्यय होगा। आशा है पाठकगण यहाँ तक के विवेचन से इन चारों उपायों का वीर्य-रक्षा में साधनत्व भली प्रकार से समझ गये होंगे।

शायद कोई पूछे कि हम तप, श्रम आदि कठिन साधनों से ही **वीर्य-रक्षा** क्यों करें? मैं इस प्रश्न का अर्थ समझता हूँ। यह प्रश्न ठीक है। बिना किसी लक्ष्य के वीर्य-रक्षा भी नहीं की जा

सकती। जिसके सामने कोई लक्ष्य नहीं है वह किसलिए ब्रह्मचर्य करे? अतः सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारा कुछ लक्ष्य होना चाहिए। इस मन्त्र में यह लक्ष्य **'लोकों का पालन-पूरण'** कहा है। असल में प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य अपने लोकों को पूर्ण करना और लोकसंग्रह करना ही है, जिसके लिए उसे ब्रह्मचर्य करना चाहिए। परन्तु सामान्यतया कुछ-न-कुछ लक्ष्य होना भी पर्याप्त है। जिसने अपने जीवन का कुछ थोड़ा-सा भी लक्ष्य बना रक्खा है, वह उसी लक्ष्य के लिए ज्ञान-दीप्ति प्राप्त करेगा, उसके लिए सदा कटिबद्ध रहेगा, सदा श्रम करेगा और तप करेगा, अतः वीर्य-रक्षा को भी प्राप्त करेगा। जिसका जितना भारी लक्ष्य होगा उसके लिए वीर्य-रक्षा करना उतना ही आसान होगा। ऋषि दयानन्द तो एक महान् लक्ष्य लेकर दुनिया में प्रविष्ट हुए थे। वे वस्तुतः लोगों का पालन और पूरण करने के ही लिए जन्मे थे। उन्हें विषयों की तरफ देखने के लिए भी फुरसत कहाँ थी? इसलिए उन्होंने अपने को ज्ञान से संदीप्त किया और आयुभर कर्त्तव्य के लिए कटिबद्ध रहे। वे जीवन-भर श्रम करते रहे और उन्होंने बालकपन से जितना तप व कष्ट सहन किया उतना दुनिया में विरले लोग ही करते हैं। इसीलिए वे अखण्ड ब्रह्मचारी रहे।

आप पूछेंगे कि हम क्या करें? हम तो दयानन्द-जैसे महापुरुष नहीं हैं, हम तो दुनिया में कोई सन्देश लेकर नहीं आये। मैं कहूँगा कि आप दयानन्द के शिष्य हैं, यही पर्याप्त हैं। हरएक आर्यसमाजी यह गर्व कर सकता है कि मैं आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्दजी का शिष्य हूँ। दयानन्द हमारे लिए अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। आर्यसमाज ही उनका पुत्र कहा जा सकता है। यदि हम अपने को दयानन्द का पुत्र न मानकर केवल अपने को दयानन्द का अनुयायी मानें, तो भी हम भारी ऋषि-ऋण का बोझ अपने कन्धों पर अनुभव करेंगे। क्या इस ऋण से मुक्त होना हमारा कर्त्तव्य नहीं है? क्या यह छोटा लक्ष्य है? क्या इसके लिए ब्रह्मचर्य की जरूरत नहीं है? आपमें से बहुत-से सज्जन प्रायः गृहस्थ-आश्रम में होंगे, इसलिए वैदिक रीति के अनुसार सन्तान उत्पन्न करना बेशक आपका कर्त्तव्य है। परन्तु इस पितृ-ऋण को उतारने के अतिरिक्त और किसी कार्य में अपने वीर्य का व्यय करना अपने गुरु को

कलंकित करना है। आपको ऋषि-ऋण उतारने के लिए गृहस्थ-धर्म करते हुए भी ब्रह्मचारी रहना चाहिए। क्या आप प्रण करेंगे कि हम दयानन्द के अनुयायी ऋतुगामी होने के सिवाय सदा वैदिकधर्म के लिए ब्रह्मचारी रहेंगे? आइये, आज हम ऋषि दयानन्द की ब्रह्मचर्यमयी दमकती हुई गुरुमूर्ति को अपने-अपने मन में अच्छी तरह से बिठलाकर उसके सामने प्रतिज्ञा करें कि—"मैं आपका शिष्य ब्रह्मचारी रहूँगा।" उनकी ब्रह्मचर्यमयी मानस मूर्ति का बार-बार ध्यान करके इसे अपने में यहाँ तक समा दें कि जब कभी हमारे सामने इस प्रतिज्ञा के तोड़ने का प्रलोभन आवे, पाशविक भोग में फँसने का ज़ोरदार प्रलोभन आवे, तो उससे भी सहस्र गुणा तीव्रता से हमारे सामने हमारे गुरु की यह मूर्ति आ खड़ी हो और वह आकर हमको मना करे, उनकी मन्यु से भरी हुई आँखें हमारी तरफ घूरती हुई हमें दिखाई दें और हमें यह गम्भीर आवाज सुनाई दे कि इस वीर्य पर तुम्हारा अधिकार नहीं है, इस पर वैद्रिकधर्म का अधिकार है। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि आप दयानन्द नहीं हैं तो ब्रह्मचारी दयानन्द के शिष्य तो हैं! वैदिक धर्म के पुनः संस्थापक गुरु के अनुयायी तो हैं! यह अनुभव आपको ऐसी स्फूर्ति देगा जिससे कि आपको वीर्य-रक्षा करना बहुत आसान हो जाएगा और वीर्यनाश करना असम्भव हो जाएगा।

यदि आर्यसमाज के सभासद् पितृ-ऋण से उतारने के कर्त्तव्य को छोड़कर सदा ब्रह्मचारी रहें तो आर्यसमाज में जो आज शक्ति है उससे हजार गुणा शक्ति इसमें आ जाएगी। इस बात में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

ब्रह्मचर्य के दीवानों के प्रति

जो मनुष्य कभी ब्रह्मचर्य के पीछे दीवाना नहीं हुआ है, उसने मेरी समझ में, ब्रह्मचर्य को पूर्ण रूप में अच्छी तरह देखा या समझा नहीं है। ब्रह्मचर्य ऐसी ही मनमोहिनी वस्तु है। फिर भी दुनिया में आज ब्रह्मचर्य के दीवाने बहुत थोड़े हैं। भोगवाद का शिकार यह वर्तमान जगत् यद्यपि कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ संयम की, कुछ-न-कुछ ब्रह्मचर्य की जरूरत समझता है, उसके

लिए कुछ यत्न भी करता है, परन्तु वह असल में भोग से इतना जर्जरित हो चुका है कि उसमें ब्रह्मचर्य की जाज्वल्यमान विभूति को, पूर्ण ब्रह्मचर्य के सूर्य को, एक आँख देख सकने की भी शक्ति नहीं रही है, तो यदि हम संसार के वर्तमान जीवों के अन्दर ब्रह्मचर्य के 'महाव्रत' के लिए तड़प न देखी जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है। किन्तु जगत् में आज ब्रह्मचर्य के दीवाने थोड़े हों या बहुत, पर 'आर्यसमाज' ने तो ब्रह्मचर्य का ही गीत गाना है, संसार को यही सन्देश सुनाना है, वह यही गा सकता है, यही सुना सकता है, कोई सुने या न सुने।

इसका कारण स्पष्ट है। संसार को आज ब्रह्मचर्य की जरूरत थी, इसलिए प्रकृतिमाता ने इस युग में दयानन्द नाम के एक महान् ब्रह्मचारी को जन्म दिया। अतः उस दयानन्द के आर्यसमाज का यदि संसार को कोई सन्देश हो सकता है, तो वह एक शब्द में ब्रह्मचर्य ही हो सकता है।

जब मैं गुरुकुल में बालक था तो अपनी श्रेणी के कुछ हम सहाध्यायी आपस में सोचा करते थे कि हम ऋषि दयानन्द की तरह ब्रह्मचारी बनेंगे। यह गुरुकुलीय वायुमंडल का प्रभाव था, पर ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है, तब हम यह न समझते थे। ब्रह्मचर्य कितना कठिन है, यह भी नहीं समझते थे। ज्यों-ज्यों बड़े होते गये, त्यों-त्यों ब्रह्मचर्य की महिमा के साथ-साथ उसकी कठिनता को भी समझते गये। परन्तु महाविद्यालय की ऊँची श्रेणी में पहुँचकर जब मैंने वेद का यह ब्रह्मचर्य-सूक्त पढ़ा और मनन किया तो मेरे ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी विचारों में सबसे अधिक क्रान्ति आयी। जिस उदात्त और व्यापक ब्रह्मचर्य का वर्णन मैंने इसमें पाया, उससे मेरी दृष्टि खुल गयी। ब्रह्मचर्य के लक्ष्य को सामने रखकर चलने को एक साफ रास्ता मुझे मिल गया। इस सूक्त के अध्ययन से जो सबसे बड़ा प्रभाव मुझपर पड़ा, वह यह था कि दुनिया में मैं जो यह सुनता रहता था कि सर्वथा अखण्ड ब्रह्मचर्य असम्भव है, वह मेरा भ्रम हट गया। मैं तब से न केवल यह देखने लगा कि पूर्ण ब्रह्मचर्य सम्भव है, किन्तु यह भी अनुभव करने लगा कि ब्रह्मचर्य ही स्वाभाविक है, प्राकृतिक है। हम अपनी उच्च प्रकृति से देखें तो यही प्राकृतिक है। मैं यहाँ तक कहने को उद्यत

हूँ कि जैसे साधारण लोग आँख के झपकने को स्वाभाविक समझते हैं, परन्तु आश्चर्य आदि की अवस्था के दृष्टान्त से जान सकते हैं कि एक ऐसी अवस्था भी आती है जबकि एकतत्त्व के देख लेने से स्वभावतः निमेषोन्मेष बन्द हो जाता है, इसकी आवश्यकता ही नहीं रहती, मनुष्य तब 'अनिमेष' अथवा 'देव' हो जाता है, इसी तरह अपने उच्च स्वरूप को देख लेने पर, पालने पर, निर्विकार अवस्था ही स्वाभाविक हो जाती है, विकार का कुछ काम ही नहीं रहता।

आज न जाने छापेखानों में काले किये जानेवाले कागजों में कितना बड़ा भाग ब्रह्मचर्य-घातक पतनकारी साहित्य से भरा होता है, तो शताब्दी पर प्रकाशित होनेवाली वैदिक उपदेश-माला पुस्तक में ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए प्रेरणा हो, पुनः-पुनः प्रेरणा हो तो कौन-सा बिगाड़ हो जाएगा, यदि कुछ लाभ न होगा! और यह ब्रह्मचर्य-चर्चा मेरी समझ में कोई नीरस भी नहीं होगी। जब लेखक को उसमें रस आता है, इसीलिए वह चर्चा करता है, तो कोई और भी ऐसे साथी मिलेंगे जिन्हें इसमें रस आयेगा। मैं तो स्वीकार किये लेता हूँ कि मैं ब्रह्मचर्य के पीछे दीवाना हूँ, पागल हूँ। पर मैं इसीलिए दीवाना हूँ, क्योंकि ब्रह्मचर्य का चमकता हुआ सूर्य मुझे अत्यन्त प्यारा और आकर्षक लगता है, और मैं उससे अपने को बहुत दूर पाता हूँ। जब मैं उसके नजदीक पहुँच जाऊँगा तब मैं शायद ब्रह्मचर्य का दीवाना न रहकर ब्रह्मचर्य का भक्त या उपासक बन जाऊँगा। इसीलिए मुझ द्वारा की गई इस ब्रह्मचर्य-चर्चा में वे ही रस ले सकेंगे जोकि मुझ-जैसे ब्रह्मचर्य-जीवन के पिपासु हैं। अतः स्पष्ट है कि आगे आनेवाले ब्रह्मचर्य-रक्षा-विषयक वचन उन्हीं भाई-बहिनों के प्रति हैं जो कि ब्रह्मचर्य के दीवानें हैं, जो कि अखण्ड ब्रह्मचर्य में श्रद्धा रखते हैं, और जो पूर्ण ब्रह्मचर्य में ही अपने आत्मा का चरम विकास अनुभव करते हैं।

वीर्य की उत्पत्ति

शुक्रं तेजोरेतसी च, बीज-वीर्येन्द्रियाणि च।

—अमरकोष

मनुष्य शरीर में रहने वाले सार पदार्थ के इतने नाम हैं—शुक्र,

तेज, रेतस, बीज, वीर्य और इन्द्रिय।

वीर्यं सर्वार्थ-साधकम्।

वीर्य सब प्रकार के अर्थों का साधने वाला है।

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः।
वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात्॥

—वैद्यक

जीव देह में सब स्थानों में रहता है, पर वीर्य, रक्त और मल में विशेष रूप से बसता है, जिसके नष्ट होने से क्षण भर में मनुष्य का नाश हो जाता है।

आयुर्वेद में कहा है—

एवं मासेन रसः शुक्रो भवति पुंसां स्त्रीणाञ्चार्तवमिति।

—सुश्रुत संहिता

इस प्रकार एक महीने में (छह धातुओं को पुष्ट करता हुआ) यह रस पुरुष के शरीर में वीर्य और स्त्री के शरीर में रज बन जाता है।

३० दिन के उपरान्त और ४० दिन के पूर्व अन्तिम धातु, वीर्य का बनना सर्वसम्मत है।

नष्टे शुक्रे सर्वरोगा भवन्ति। —सूक्ति

वीर्य के अभाव में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रमेह

जब मनुष्य का वीर्य बिगड़कर स्वयं शरीर से किसी न किसी रूप से बाहर निकलने लगता है, तब उसे 'प्रमेह' कहते हैं।

प्रमेह का नाम लेते ही एक बार हृदय धड़कने लगता है। यह अत्यन्त भयंकर और भारतव्यापी रोग है। वैद्यकशास्त्र में दोषों के भेद से यह २० प्रकार का माना गया है। इसकी अन्तिम अवस्था में प्राणों का नाश हो जाता है।

मानव और ब्रह्मचर्य

बालक एक मानवीय खिलौना है, जैसे मिट्टी आदि के बने खिलौने हुआ करते हैं। कोई खिलौना अच्छा है या नहीं इसकी पहचान के लिए अथवा उसे अच्छा बनने के लिए तीन बातों पर ध्यान रखना होता है। एक तो यह कि वह शीघ्र टूटे-फूटे नहीं या शीघ्र उसके अङ्ग-भङ्ग न होते हों तो वह खिलौना अच्छा है, प्रतिकूल इनके खिलौने को उठाने धरने पर या कुछ खेलने से ही कभी उसका हाथ टूट जाये कभी पैर, कभी शिर और कभी अन्य अंग तो खिलौना अच्छा नहीं है। ऐसे ही जो बालक रूप मानवीय खिलौना सदा स्वस्थ रहे या प्रायः स्वस्थ रहे अच्छा मानवीय खिलौना है। वह स्वयं सुख पायेगा और अन्यों को सुख पहुँचायेगा, समाज तथा देश की सेवा कर सकेगा। जो बालक ऐसा हो कि कभी उसकी आँख दुःखे, कभी नाक,, कभी कान, कभी मुख। कभी उसे अतिसार हो, कभी मलबन्ध। कभी मूत्र रोग, कभी प्रमेह हो। कभी उदरपीड़ा, कभी ज्वर, कभी आध्मान (अफारा) और तिल्ली आदि के रोग पुनः-पुनः होते रहें वह ऐसा बालक अच्छा मानवीय खिलौना नहीं है। वह स्वयं दुःख पायेगा और अन्यों के भी दुःखों का कारण बनेगा, समाज और देश का तो उससे क्या होना है।

दूसरी बात खिलौने के अच्छा होने की यह है कि उसका आकार-प्रकार देखने में यथोचित हो तो वह अच्छा है, यथोचित न हो तो वह अच्छा नहीं जंचता। ऐसा ही बालक मानवीय खिलौना शरीर और वस्त्रों से देखने में यथोचित है, व्यवस्थित है तो वह अच्छा मानवीय खिलौना है। वह अन्यों के प्रेम का पात्र और पास बैठने बिठाने के योग्य होगा। जो बालक शरीर और वस्त्रों से यथोचित व्यवस्थित न हो जिसके शरीर पर मल चिपका हो, नाक बहता हो, आँख मुख भी शुद्ध न हो, हाथ पाँव गन्दे और वस्त्र मैले एवं जीर्ण (फटे हुए) हों, तो वह मानवीय

खिलौना अच्छा नहीं, रंग गोरा होने पर भी उससे लोग प्रेम नहीं करते अपितु घृणा किया करते हैं, पास नहीं बिठाते हैं।

तीसरी बात खिलौने के अच्छा होने की है उस पर रंग रूप पालिश का होना। जिस खिलौने पर रंग रूप पालिश पक्की और चमकदार हो तथा यथास्थान हो वह खिलौना अच्छा है। घर की सभाभवन की शोभा बढ़ाने वाला है। विपरीत इसके जिस खिलौने की रंग रूप पालिश हाथ के लगने से हट जाए, वस्त्र छू जाने से मिट जाए, पानी पड़ने से धुल जाए या देखने में रंग रूप पालिश अशोभनीय हो तो वह खिलौना अच्छा नहीं है। ऐसे ही जिस बालकरूप मानवीय खिलौने पर सभ्यता सुशिक्षा का रंग रूप चढ़ा हो कि कैसे माता-पिता बड़े छोटे बन्धुजनों से व्यवहार करना बोलना और कैसे आचार्य अतिथि मान्य से तथा कैसे शासक या नेता से एवं कैसे दुःखी अशक्त से व्यवहार करना चाहिए, कैसे किसी के यहाँ अतिथि बनकर जाने पर और कैसे सहयोगियों से वर्तन करना तथा कैसे सभा-सम्मेलन में बैठना उठना आदि व्यवहार करना होता है यह सब उसके जीवन में हो। विद्या, परहित चिन्तन आदि सद्‌गुणों और परमात्मा से जिस का अन्तरात्मा सुभूषित हो वह बालक अच्छा खिलौना है। वह संसार में चमकने वाला तथा समाज देश और विश्व का उपकार करने वाला नेता, महात्मा, महापुरुष तथा महाविद्वान् बनेगा। विपरीत जो बालकरूप मानवीय खिलौना ऐसा हो कि जिस पर सभ्यता सुशिक्षा का रंग रूप न हो, माता-पिता, आचार्य-अतिथि मान्यों के प्रति उचित मान का व्यवहार करना जिसे न आता हो, छोटों से वर्ताव न जानता हो, बन्धुओं तथा साथियों के साथ बोलना बैठना न आता हो, शासक नेता के प्रति उचित वर्ताव न कर सकता हो, दुःखी अशक्त से व्यवहार करना न आता हो, न ही किसी के यहाँ कैसे अतिथि होकर बैठते उठते हैं यह जानता हो, सभा सम्मेलन में भी प्रविष्ट होना, बैठना, उठना न आता हो, परहित चिन्तन परोपकार के मार्ग का बोध न हो, विद्या के सदुपयोग से रहित हो, जीवन में सद्‌गुणों का आधान न हो और परमात्मा के प्रति कृतज्ञता श्रद्धा न हो, वह ऐसा बालक अच्छा मानवीय खिलौना नहीं है। वह संसार में चमकने वाला न बन सकेगा, किन्तु

साधारण तुच्छ जन्तु-सा या निकृष्ट मानव ही बनकर रह जायेगा।

सो यह बालकरूप मानवीय खिलौना निकृष्ट न बन सके इससे सावधान रहने और उच्च बन सके उसके लिए उपाय का प्रदर्शन एवं विधान इस पुस्तक के भिन्न-भिन्न प्रकरणों में यथास्थान मिलेगा।

बाल्यावस्था या बाल्यकाल ऐसा है। जिसे किसी वृक्ष के अंकुर या कुछ उभरे हुए अल्पवयस्क तरु (पौधे) का समय होता है। तब जैसे वह योग्य व्यवस्था, रक्षा, समुचित खाद और वातावरण को प्राप्त करके स्थिर रहता तथा भविष्य में अच्छा फूलता फलता है। ऐसे ही बालक भी निर्दिष्ट शिष्टाचार सदाचार और विद्या आदि लाभों से युक्त होकर अपने वर्तमान में स्थिर स्वस्थ गुणवान् होता है और भविष्य में मानवीय जीवन के उच्च फूलों और फलों को प्राप्त कर प्रफुल्लित सफल सानन्द होगा।

—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

१०-८-१९५९ ई०

ब्रह्मचर्य का ढ़ोंग

ब्रह्मचारी का ढ़ोंग पूर्व और पश्चिम नामक स्वरचित पुस्तक में लेखक ने लिखा है कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला ब्रह्मचारी घर पर आया हुआ था, घर में उसकी सगी बहन बीमार से बहुत पीड़ित थी, वह तड़प रही थी वह सोचता है कि बहन को स्पर्श करूँगा तो मेरा व्रत भंग होता है, बहन को अस्पताल में न ले जाकर मृत्यु को समर्पित करता है यह उसका ब्रह्मचर्य का ढौंग है।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव

पुत्र और योगिराज श्री कृष्ण

महाभारत में एक कहानी है कि योगिराज श्री कृष्ण और रुक्मिणी ने विवाह के पश्चात् पुत्र की प्राप्ति के लिए बारह वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्य द्वारा हिमालय में तपस्या की।

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादश वार्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वाभिप्रेत्य यो मया तपसार्जितः॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः॥

—सौप्तिक पर्व १२।३०-३१

जिसका परिणाम यह हुआ कि रूप-रंग में हू-बहू श्री कृष्ण जैसा ही तेजस्वी, वर्चस्वी प्रद्युम्न नाम का पुत्र पैदा हुआ। पुत्र को देखकर पिता श्री कृष्ण प्रतीत होता था पिता श्री कृष्ण को देखकर प्रद्युम्न प्रतीत होता था। माता रुक्मिणी पुत्र और पति के एक-जैसे शरीर व आकृति को देखकर पहचान नहीं कर पाती थीं कि कौन श्री कृष्ण है और कौन प्रद्युम्न है। जब प्रद्युम्न स्वयं हँसकर परिचय देता था तो माता रुक्मिणी समझ पाती थी।

भारतवर्ष में कई स्थानों पर पुत्र और पिता की आकृति एक-जैसी दिखाई देती है। पिता को देखकर पुत्र और पुत्र को देखकर पिता को पहचान लेते हैं।

प्रायः बहुत-से घरों में एक पिता के दो सन्तान जुड़वे होते हैं। दोनों की आकृति एक-जैसी होती है। दोनों में छोटे-बड़े का अन्तर नहीं कर पाते हैं। परिचय मिलने या पूछने पर छोटे-बड़े का पता चलता है।

बालक के निर्माण में माता-पिता दोनों का ही महत्त्व है। इस विषय पर श्री राम एवं लक्ष्मण का संवाद उत्तम प्रकाश डालता है। ऐसी किंवदन्ती है कि जिस समय श्री राम और लक्ष्मण वन

में थे, तब लक्ष्मणजी के ब्रह्मचर्य की परीक्षा के लिए श्री राम ने प्रश्न किया—

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा च नवयौवनाम्।
एकान्ते काञ्चनं दृष्ट्वा कस्य नो विचलेन्मनः ॥

अर्थ—सुन्दर सुगन्धित पुष्पों को, स्वादिष्ट फलों को और नवयौवना को देखकर तथा एकान्त में पड़े हुए कांचन (सुवर्ण) को देखकर किसका मन विचलित नहीं होता? यतिवर लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

माता यस्य पतिव्रता पिता च यस्य धार्मिकः।
एकान्ते काञ्चनं दृष्ट्वा तस्य नो विचलेन्मनः ॥

अर्थ—जिसकी माता पतिव्रता (उच्च चरित्रवाली) और पिता धार्मिक (सदाचारी) है उसका मन एकान्त में पड़े हुए सुवर्ण (सोने) को देखकर भी विचलित नहीं होता। सदाचारी तथा धार्मिक माता-पिता बालकों को पवित्र ब्रह्मचर्य की शिक्षा देकर उनका चरित्र-निर्माण करते हैं।

श्री राम भ्राता लक्ष्मण और ब्रह्मचर्य

ऋष्यमूक पर्वत पर जब सीता देवी के आभूषण को पहचाने के लिये लक्ष्मण के सामने रखा गया तब लक्ष्मण कहते हैं—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जनामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

न मैं हाथ के बाजूबन्द और न कान के कुण्डल को जानता हूँ, मैं नित्य प्रतिदिन चरण स्पर्श करता था तो पैरों के नूपूर को जानता हूँ। इससे बढ़कर ब्रह्मचर्य की मिशाल कहीं भी देखने को नहीं मिलती।

ब्रह्मचर्य के बाधक कारण

अष्टविध मैथुन

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वरचित संस्कार विधि के वेदारम्भ प्रकरण में मैथुन वर्जय अर्थात् आठ प्रकार के मैथुन को छोड़ देना। इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में भी अष्टमैथुनों पर विशेष रूप से जोर दिया है—

अर्थात्—जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहे, तब तक स्त्री और पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर कीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें। और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावे, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त होके, आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। ब्रह्मचर्य एक दिव्य शक्ति है, ब्रह्मचर्य से सचमुच ही मनुष्य में दिव्य शक्तियों का संचार होता है। किसी संस्कृत के कवि ने अपृ मैथुन का श्लोक में इस प्रकार चित्र खिंचा है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया-निष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम्॥

—दक्षस्मृति ७।३१।३२

अर्थ—स्मरण, कीर्त्तन, क्रीड़ा करना, अवलोकन गुप्तभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निवृति ये मैथुन के आठ अङ्ग मनीषियों द्वारा निश्चित किये गये हैं।

(१) **स्मरणम्**—जिसने कागज के सिनेमा या टेलिवीजन में किसी सुन्दर स्त्री अभिनेत्री को देखा या किसी स्त्री ने अभिनेता को देखा या उसका चाहने वाला हो गया, दिन रात उसका स्मरण करना।

(२) **कीर्तनम्**—चलचित्र में या स्कूल-कॉलेज, विश्वविद्यालय में देखकर युवति स्त्री या विश्वसुन्दरी के गुणों का गान करना कीर्तन कहलाता।

(३) **प्रेक्षणम्**—स्त्रियों और युवतियों के रूपलावण्य को, बार-बार कामुक दृष्टि से देखना।

(५) **गुह्यभाषणम्**—स्कूल-कॉलेज और विश्वविद्यालय में जहाँ सहशिक्षा होती है गुप्त रूप से गलफ्रेण्ड से कामुकता वाली बातें करना।

(६) **संकल्पः**—प्रत्यक्ष में आकर्षक स्त्री को देखकर उसको प्राप्त करने के लिये दृढ़ संकल्प करना, मैथुन माना गया है।

(७) **अध्यवसायः**—किसी भी स्थान पर स्त्री सहवास का आनन्द लेना, उस स्त्री को अपना बनाने के लिये प्रयत्न करना, यह मैथुन का सातवाँ लक्षण है।

(८) **क्रियानिष्पतिः**—किसी स्त्री से साक्षात् सम्बन्ध स्थापित करना, मैथुन करके ब्रह्मचर्य नष्ट करना ही क्रिया निष्पत्ति का लक्षण है। ये आठों मैथुन मनुष्य को पतन की ओर ले जाने वाला है, जैसे एक कंजूस साहूकार रुपये को कंजूसी से जमा करता रहता, खर्च नहीं करता, कंजूस साहूकार की भाँति ब्रह्मचारी को वीर्य का संरक्षण करना चाहिये।

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक्। —दक्ष-संहिता

आंठ प्रकार के मैथुनों से परे जो ब्रह्मचर्य हैं, उसकी सदा रक्षा करनी चाहिए।

इस सब का सार किसी बुद्धिमान संस्कृत के कवि ने लिखा है—

वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्य नासक्तो साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥

अर्थात् ब्रह्म ने स्त्री और स्वर्ण ये दो चक्र जाल बनाये हैं, जो इनमें नहीं फँसता वह मनुष्य के रूप में ही शिव है।

शिष्य-गुरु संवाद

(क) शिष्य—गुरुवर! विवाह के पश्चात् स्त्री प्रसंग कब

करना चाहिये?

उत्तर—मनुष्य को एक वर्ष में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! एक वर्ष मनुष्य से न रहा जाये तो?

उत्तर—मनुष्य को छह महीने में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! छह मास में न रहा जाय तो?

उत्तर—मनुष्य को तीन महीने में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! तीन मास में न रहा जाय तो?

उत्तर—मनुष्य को दो मास में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! दो मास में न रहा जाये तो?

उत्तर—मनुष्य को एक मास में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! एक मास में न रहा जाये तो?

उत्तर—मनुष्य को दो सप्ताह में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! दो सप्ताह में न रहा जाय तो?

उत्तर—मनुष्य को एक सप्ताह में एक बार।

शिष्य—गुरुजी! एक सप्ताह में न रहा जाय तो?

उत्तर—कफन में दियासलाई से स्वयं को भस्म कर लेवे यही सबसे बढ़िया सामाधान है।

(ख) एक दिन ठाकुरप्रसाद सुनार ने दानापुर में स्वामीजी से कहा कि मुझ को योग की विधि बतलाइये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि एक विवाह और कर लो तुम्हारा योग पूरा हो जायेगा। ठाकुरप्रसाद ने कुछ समय पूर्व अपनी पहली पत्नी के होते हुए दूसरा विवाह किया था। स्वामीजी को इस बात का पहले से पता नहीं था।

भगवान् शंकर के द्वारा ब्रह्मचर्य के विषय में कहलाया गया है—

मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्।

ब्रह्मचर्य का एक बूँद नष्ट होना ही मृत्यु है, ब्रह्मचर्य का पालन रक्षा करना ही जीवन है।

छायाचित्र पर आसक्त

प्राचीन समय में राजाओं का राज्य था, उस समय आधुनिक

विज्ञान विकसित नहीं था, जैसे सिनेमा, मोबाइल, कम्प्यूटर, इण्टरनेट भी नहीं था, उस समय रामलीला नाटक, हरिश्चन्द्र नाटक और महाराणा प्रताप नाटक से कार्य चलाया करते थे। यही मनोरञ्जन के साधन थे। एक बार राजा के पुत्र राजकुमार को रामलीला में सीता का पात्र बनाया गया, राजकुमार बारह-तेरह वर्ष का था, छोटी आयु में सिर के बाल बालिका जैसे रखा गया, साधन-प्रसाधन से चेहरा को चमकाया गया, सुन्दर-सी सचमुच सीता ही लग रही थी। रामलीला में सीता की भूमिका में फोटो खिंच लिया गया, वही फोटो किसी पुस्तक या सन्दूक में सुरक्षित रख दिया गया, सीता वाला फोटो पच्चीस या छब्बीस वर्ष के बाद राजकुमार के हाथ लग गया, वह अपने स्वरूप को भूल चुका था। सीता का फोटो देखकर राजकुमार उदास रहने लगा। रानी ने राजकुमार से उदास रहने का कारण पूछा, दो-तीन दिन तक राजकुमार ने भोजन नहीं किया। बहुत पूछने पर अपनी माँ रानी को फोटो दिखाया और कहा कि मेरे पास एक फोटो हाथ लगी है, मैं विवाह करूँगा तो इस लड़की से करूँगा नहीं तो मैं किसी और से नहीं करूँगा। रानी ने राजा से इस घटना की सूचना दी। राजा ने इस लड़की का फोटो देखकर फोटोग्राफर को बुलवाया और कहा कि यह फोटो मेरे राज्य में किस लड़की का है, इसका घर का पता करो, मेरा पुत्र राजकुमार इससे विवाह करना चाहता है। फोटोग्राफर ने कहा दो-तीन दिन के बाद मैं आप को बतलाऊँगा। दो-तीन दिन बाद बीतने पर फोटोग्राफर ने राजा से कहा, यह फोटो कभी राजकुमार ने बचपन में रामलीला में सीता का पार्ट-रोल अदा किया था सीता का पार्ट करते समय इसका फोटो खिंच लिया गया था, यह फोटो बचपन का राजकुमार का ही है। राजा ने राजकुमार से कहा यह फोटो बचपन का तुम्हारा ही है, तुमने रामलीला में नाटक किया था, यह फोटो किसी लड़की का नहीं है। यह फोटो तुम्हारा ही है। अपनी फोटो पर आसक्त देखकर राजकुमार को बहुत ग्लानि और पछतावा हुआ।

(२) आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद मध्यप्रदेश की घटना

मैं ब्रह्मचारी नन्दकिशोर गुरुकुल में ही निवासस्थान था। एक दिन गुरुकुल के नलकूप पर स्नान कर रहा था, गर्मी का दिन था,

मेरी चढ़ती हुई जवानी थी। बसु ब्रह्मचारी से रुद्र ब्रह्मचारी की ओर अग्रसर था। स्नानागार में ऊँचे स्थान पर नल टूटी लगी हुई थी। भयंकर गर्मी के कारण कोपीन में स्नान करने लगा। बहुत आनन्द आ रहा था। उछल-कूद कर स्नान कर रहा था। अङ्ग-प्रत्यङ्ग को मल-मल कर स्नान कर रहा था। स्नान करते समय में अपने शरीर से खेलने लगा। मैं जब मस्तक आँख, नाक, कान, जाँघों को छूकर मल-मल कर आसक्त हो गया। इतने में ध्यान आया मैं क्या कर रहा हूँ। एक मन्त्र मुझे कण्ठाग्र था, रे मेरे मन के पाप दूर हट मैं तुझे नहीं चाहता। जंगलों वनों में चला जा। मेरा मन गौ आदि सेवा में लगा हुआ है। पास ही गोशाला था, गुरुकुल के गायों को खोलकर चराने लगा।

विमर्श—ब्रह्मचारी का सबसे प्रिय खेल गौ आदि की सेवा करना। संस्कार विधि और सत्यार्थप्रकाश में अङ्ग मर्दन करना ब्रह्मचारी के लिये निषेध है।

आजकल साधन प्रसाधन पाउडर आदि से बच्चे से बूढ़े-स्त्री-पुरुष सभी चेहरे शरीर को सुन्दर बनाने में लगे हैं। प्रतिस्पर्धा करते हैं कि मैं सबसे सुन्दर हूँ, चाहे खाने को पेट में कुछ भी न हो, दूध-घी खाने से चेहरे में चमक आती। ब्रह्मचर्य को दृढ़ता से पालन करने में चेहरे पर चमक आती है। लाखों पक्षी कबूतर-तोते को मारकर ओठों को रङ्ग कर बन-ठनकर बाजारों में चलती हुई नारियाँ मिल जायेगी। महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, केरल और तमिलनायडू यहाँ के स्त्रियाँ ओठों को लाल कभी भी नहीं करती। बुराई से बचने का अच्छा उपाय है।

एक मेरे मित्र नई-नई शादी करके पानीपत आ गये। पक्के ब्राह्मण वैदिकधर्मी थे। नाम पण्डित प्रियदत्त था। सादा जीवन ऊँच्च विचार अभाव ग्रस्त में भी मस्त थे। कोई भी साधु-संन्यासी और ब्रह्मचारी रात को बारह बजे इनके द्वार पर आये, उसको भरपेट खाना खिला-पिलाकर ही उनको आनन्द आता था, जाते समय पच्चीस-पच्चास रुपया देकर ही विदा करते थे। एक बार उनकी पत्नी ने ओंठ में लाली लगा ली, पण्डितजी को हल्का-सा क्रोध आ गया। वह भी बेचारी नई-नई दुनियाँ देख रही थी। पानीपत की महिलाओं को देखकर दुकान से ओंठ की लाली

खरीद कर ले आयी और लगा ली। स्त्री समाज के सत्सङ्ग में जा रही थी। पण्डितजी ने देख लिया और कहा कि देवीजी आप मुझको चाहती हो कि किसी और को ? देवीजी ने कहा क्या बात है। मुझको खुश रखना चाहती हो तो ओंठ में लाली मत लगाओ। दूसरे को चाहती हो तो घर से निकलो। उस विचारी ने ओंठ में लाली लगाना सदा के लिये छोड़ दी। इसमें भी ब्रह्मचर्य का रहस्य छिपा है।

पञ्च विकार से मृत्यु

किसी मनस्वी संस्कृत के कवि ने ठीक ही कहा है—

पतङ्ग मातङ्ग कुरङ्ग भृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥

रूप

(३) **पतङ्ग**—रूप पर पतङ्गा का सर्वनाश के प्राश में अगिनत पतङ्गा गिरता है और मर जाता है। ऐसे ही नासमझ युवक सिनेमा, टेलीविजन, कम्प्यूटर के चलचित्रों को देखकर झूठे हीरो-हिरोइन पर फिदा होता है, और पतङ्गा की भाँति जान को गँवा देता है।

स्पर्श

(२) मातङ्ग (हाथी) स्पर्श से मारा जाता है जङ्गल में हाथी को पकड़ने के लिये गड्ढा खोद दिया जाता, गड्ढे के ऊपर बाँस की फटियाँ तैयार की जाती है, उस पर नकली हथिनी रेत-(बालू) की बना दी जाती है। मदमस्त हाथी हथनी समझकर छलाङ्ग लगाता, गड्ढे में गिर जाता, इस प्रकार स्पर्श से हाथी मारा जाता है।

शब्द (ध्वनि)

(१) कुरङ्ग (हिरण) को गीत-संगीत में बहुत आनन्द आता है। कान की वशीभूत उसको शिकारी फँसा लेता है और पकड़ा जाता है।

गन्ध

(४) भृङ्ग (भ्रमरा) गन्ध व्यसन के कारण पुष्प में बन्द होकर मर जाता है। संस्कृत के महाविद्वान् ने भ्रमरा के विषय में

चित्र खींचा है

रात्रीर्गमिष्यति सुप्रभातं भविष्यति भास्वानुदिष्यति।
हंसिष्यति पंकजश्री इत्थं विचिन्तयति द्विरेफे
कोशगते हा हन्त! हा हन्त! नलिनीं गजुज्जहारः ॥

एक भ्रमरा कमल के फूल में बैठकर गन्ध व्यसन में आसक्त है, गंन्ध ले रहा, वह सोच रहा है कि रात्री बीतेगी प्रातःकाल होगा, सूर्य निकेगा, कल खिलेगा, मैं इस प्रकार विचार कर रहा है उधर से एक मदमस्त हाथी आया कमल की नाल तोड़कर मुँह में रख लिया इस प्रकार से भ्रमरा गन्ध से मारा जाता है।

रस

(५) मीनाः—मछली को कहते हैं। मछली जिह्वा के वशीभूत मारी जाती है। मछली रस के व्यसन में काँटे सहित आटे की गोली को निगलने से मारी जाती है।

जब जीव-प्राणी एक-एक विषय से शिकार होकर मारे जाते हैं तब मनुष्य के मस्तिष्क में सब एक साथ शरीर स्पर्श से रूप, कान, नाक और जिह्वा सब विद्यमान है तो उसकी क्या दशा होगी।

हिन्दी के कवि ने भी ज्यों-के-त्यों इस श्लोक का अर्थ किया है—

(क)

रूप व्यसन वश दीप शिखा पर कीट पतङ्ग का जल भुनना।
स्पर्श व्यसन वश गिर गर्त में हाथी का न हिल सकना।
शब्द व्यसन में फँसकर हिरना भूल गया कूद उछलना।
गन्ध व्यसन वश हो बन्द कमल में भंवरे का भी मर मिटना।
रस व्यसन वश मछली का भी फँस काँटे में तड़प मरना॥

(ख)

रूप प्रलोभ पतंग जले, गज भोग फँसे टुक स्पर्श किये से,
शब्द प्रलोभ कुरंग बँधे, फँसता भ्रमरा प्रिय गन्ध पिये से।
मीन प्रलोभ फँसे रस के, यह पाँच फँसे उर एक लिये से,
'नन्द' कहे नर क्यों न फँसे, मन पाँच विषय नित ध्यान दिये से॥

पं० अमृतलाल शर्मा एवं श्री सूरदासजी

आर्य प्रतिनिधि सभा विदर्भ व मध्यप्रदेश के अन्तर्गत गुरुकुल होशंगाबाद नर्मदा के किनारे स्थित है। इस आर्ष गुरुकुल के पुनः उद्धारक आचार्य स्वामी भूमानन्दजी थे, इनके काल में गुरुकुल सुचारु रूप से चलने लगा, ठीक चला किन्ही कारणों से स्वामीजी गुरुकुल छोड़कर सन् १९७८ में हरिद्वार की ओर चले गये। सभा के प्रधाना माता कौशल्या देवी, मन्त्री रमेशचन्दजी श्रीवास्तव ने पुनः चलाने का प्रयास किया। इन दोनों ने गुरुकुल होशंगाबाद को चलाने के लिए खण्डवा निवासी पं० अमृतलाल शर्मा को व्यवस्थापक नियुक्त किया। पुनः गुरुकुल चलने लगा। विपद् का मारा होशंगाबाद निवासी सूरदास भोजन करने के लिये नगर से प्रतिदिन गुरुकुल में आ जाते थे, एक दिन स्वामी सेवानन्दजी ने कहा जब तुम यहीं भोजन करते हो तो गुरुकुल में ही रहो, थोड़ा-बहुत गुरुकुल की सेवा करते रहना। सूरदासजी गुरुकुल में रहने लगे। मुझ ब्र० नन्दकिशोर का पक्का दोस्त बन गया। मैं उसके साथ कभी बाजार या नौका द्वारा नर्मदा पार घूमकर आ जाता था, सूरदास छोड़कर गुरुकुल में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। जिसके साथ मैं विचार-विमर्श कर सकूँ। एक समय ऐसा आया पं० अमृतलालजी मुझसे कहा कि सूरदास आप का मित्र है आप सूरदास को गुरुकुल परिसर से बाहर जाने से रोको, मैंने शर्माजी से कहा, अन्धा है लाचार है। दो-तीन दिन तक टोकते रहे। मैं समझ नहीं पाया। पुनः एक दिन शर्माजी ने कहा मैं गृहस्थी हूँ आप नहीं जानते। सूरदास को बाहर जाने से रोको, गुरुकुल की बदनामी होगी। सूरदास झुगी-झोपड़ी में ज़ाते हैं, रेलवे फाटक पर एक लङ्गड़ी स्त्री रहती है २०-२५ बकरी उसने पाल रखी है, उसके यहाँ चाय पीते हैं। मैंने कहा—सूरदासजी चाय पीते हैं, फिर क्या हुआ, चाय पीने दीजिये। फिर शर्माजी झुझलाकर कहा कि संसर्ग-दोष हो जायेंगे, स्त्री को सूरदास धीरे-धीरे स्पर्श करने लग

जायेंगे, सूरदासजी अन्धे हैं तो क्या हुआ, आँख नहीं है बाकी नव इन्द्रियाँ तो हैं। शर्माजी के कहने से मेरी आँखें खुल गयी। दूसरे दिन मैंने सूरदासजी को जोश में आकर कहा, ओ! सूरदासजी आज से तुम झुग्गी-झोपड़ी में नहीं जाओगे, यदि जाते हो तो गुरुकुल से तुम्हारी छुट्टी हो जायेगी। तब से सूरदासजी ने गुरुकुल छोड़कर बाहर जाना छोड़ दिया। महर्षि मनु ने ठीक ही कहा है—

श्रुत्वा स्पृष्टवा च दृष्टवा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥

—मनु० अ० २।९८

जो स्तुति सुनकर हर्ष और निन्दा सुनकर शोक अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट रूप देख के अप्रसन्न। उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित। सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता उसको जितेन्द्रिय कहते हैं।

उपसंहार

ब्रह्मचर्य महिमा

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव योज्ञातातं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदब्रह्मचर्येण ब्रह्म ह्येवेष्ट्वाऽत्मानमुनविन्दते ॥ १ ॥

अर्थ—वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से ज्ञाता=ब्रह्मयज्ञ होता है। उसको प्राप्त करता है। और जिसको इष्ट ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से, इष्ट परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवाऽऽत्मानमनुविद्य मनुते ॥ २ ॥

अर्थ—अब जिसे सत्त्रायण नाम यज्ञ कहते हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से सर्वदा विद्यामन=अनश्वर जीवात्मा को रक्षा पाता है और जिसको मौनं क्योंकि ब्रह्मचर्य ही से परमात्मा को जानकर मनन करता है ॥ २ ॥

अथ यदनाशकायमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके। तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरणमयम् ॥ ३ ॥

और जिसको अनाशकायन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि यह आत्मा नष्ट नहीं होता जिसको ब्रह्मचर्य से प्राप्त करते हैं। और जिसको अरण्यायन कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति के लिए 'अर' और 'ण्य' दो समुद्र हैं निश्चय यहाँ से तीसरे द्यौलोक में यहाँ 'एरंमदीय' सरोवर हैं वहाँ अमृत टपकता हुआ एक अश्वत्थ वृक्ष है वहाँ एक अजेय ब्रह्म की पुरी है और प्रभु निर्मित एक सुनहरी स्थान है ॥ ३ ॥

तद्य एवैतावरं च ण्यञ्चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवेष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—अब जो ब्रह्मलोक प्राप्ति के लिए इन 'अर' और 'ण्य' दोनों समुद्रों को ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त करते हैं उन्हीं का यह ब्रह्मलोक है, उसका समस्त लोकों में स्वेच्छाचार होता है॥४॥

व्याख्या—इस खण्ड में ब्रह्मचर्य की महिमा की गई है। यज्ञ ....सत्त्रायण, मौन, अनाशकायन, अरणायायन को ब्रह्मचर्य ही बतलाया गया है। इन शब्दों के भाव इस प्रकार हैं—

(१) **यज्ञ**—यज्ञ को ब्रह्मचर्य प्रकट करते हुए ब्रह्म-प्राप्ति का साधन बतलाया गया है। यज्ञ शब्द विचार करने से यह वर्णन पुष्ट हो जाता है। यज्ञ शब्द की सिद्धि 'यज्' धातु से साधारणतया की जाया करती है। परन्तु 'यत्+ज्ञ' को मिलाने से भी यज्ञ शब्द बना करता है। जानने वालों को 'ज्ञ' कहते हैं। इस प्रकार 'यत्+ज्ञ'-यज्ञ का अर्थ हुआ जिससे ब्रह्म जाना जावे। यहाँ उसी साधन को ब्रह्मचर्य कहा गया है।

(२) **इष्टम्**—इच्छित वस्तु—यहाँ ब्रह्म को इष्ट कहकर उस (इष्ट) को ब्रह्मचर्य ही कहा गया है।

(३) **सत्त्रायण**—सत:=जीवात्मा+त्राणं=रक्षा जिसे पाता है वह सत्त्रायण (यज्ञ) ब्रह्मचर्य रूप है।

(४) **मौन**—मनन करना (मुनेर्वृत्तं मौनम्)। ब्रह्मचर्य से शक्ति उत्पन्न होकर मनुष्य मनन करता है, इसलिए मौन को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है।

(५) **अनाशकायनम्**—अनाशकयनम्—यज्ञ आदि प्रकरणों में उपवास करना-भूखा रहना अनाशकायन कहलाता है। उपवास से मनुष्य की वृत्ति शुद्ध होती है, इसलिए इस (अनाशकायन) को भी ब्रह्मचर्य कहा गया है।

(६) **अरण्यायन**—वन जाने का नाम है। अर्थात् ब्रह्म की खोज में वन जाकर एकांत वास करना अरण्यायन नामवाला यज्ञ कहा जाता है। 'अरण्य' शब्द दो शब्दों का योग है 'अर'+'ण्य'। इनमें से 'अर' कर्म को कहते हैं। अर शब्द साधारणतया पहिये की नाभि में जुड़नेवाली लकड़ियों को कहते हैं जिनके योग से पहिया काम देने योग्य हो जाया करता है। 'ण्य' के अर्थ जाना और चलना आदि के हैं। 'नय' शब्द इसी का दूसरा रूप है। अरण्य के अंतिम भाग 'ण्य' और ण+य़=नय में अन्तर है। 'ण्य'

दो धातुओं से सिद्ध होता है 'ण्य' जिसके अर्थ नाश करने के हैं और 'या' जिसके अर्थ प्राप्त करने के हैं। अरण्यायन यज्ञ के दो अंग ज्ञान और कर्म हैं। ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना और उसी के अनुकूल आचरण (कर्म) करना। 'अर' को कर्म कहा जा चुका है इसलिए 'ण्य' को उपर्युक्त भाँति ज्ञान के अर्थ में समझना चाहिए। इस प्रकार अरण्यायन भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ज्ञान प्राप्त करना और वैसा ही कर्म करना, ये दोनों ब्रह्मचर्य के मुख्य अंग हैं।

उपनिषद् के तीसरे खण्ड में, अरण्यायन यज्ञ का विवरण देते हुए कहा गया है—ब्रह्मप्राप्ति के लिए 'अर' और 'ण्य' नाम के दो समुद्र हैं। यहाँ से तृतीय द्युलोक में वह प्रसिद्ध 'ऐरमदीय' सर=सरोवर है, वहाँ सोम=अमृत टपकता हुआ एक वृक्ष सुनहरा स्थान है। इस विवरण पर विचार करना चाहिए।

अर और ण्य नामक दो समुद्र—'ब्रह्मलोके' इस वाक्य के अर्थ कुछ एक टीकाकारों ने 'ब्रह्मलोक' में किये हैं और उसी ब्रह्मलोक में इन दोनों समुद्रों का होना प्रकट किया है। परन्तु जब स्वयं ब्रह्मपुरी का द्युलोक में होना कहा गया है तो फिर इन समुद्रों के ब्रह्मपुरी होने की बात कुछ अधिक वजन नहीं रखती। इसलिए 'ब्रह्मलोके' का भाव ब्रह्म-प्राप्ति के लिए कहा जाना अधिक उचित मालूम होता है। अर्थात् प्राप्ति के लिए दो समुद्रों 'अर'=कर्म और 'ण्य'=ज्ञान का पार करना जरूरी है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने और निष्काम कर्म करने ही से मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त किया करता है। इस ब्रह्म की प्राप्ति से द्युलोक में एक सरोवर प्राप्त होता है। जिसे ऐरमदीय कहते हैं। ऐरम्=कर्मजनित+महीदयम्=हर्षदायक, इस प्रकार ऐरमदीय के अर्थ कर्म के फल रूप सरोवर के हैं। तात्पर्य यह हुआ की ज्ञान और कर्म के फल से आनन्द की प्राप्ति होती है और अमृत देने वाले वृक्ष के मिलने से अमर जीवन प्राप्त होता है, वही ब्रह्म की अपराजितपुरी है वही हिरण्मय=ज्योतिर्मय स्थान है। इन सब आलंकारिक वर्णन का अभिप्राय यह हुआ कि उत्कृष्ट कर्म और ज्ञान से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है और मोक्ष में ब्रह्म की प्राप्ति से उसी आनन्द अमर जीवन और प्रकाशमय स्थान की प्राप्ति होती है। —छान्दोग्योपनिषद्

परिशिष्ट

कवित और गीत

बाल ब्रह्मचारी हनुमन्त कूद लंक बीच,
मान मर्दि रावण के लंक को जलाया था।
महाराणा ब्रह्मचारी सुभट प्रतापसिंह,
सेना मार मुगलों की बल दिखलाया था।
योगी ब्रह्मचारी कृष्ण जीत महाभारत को,
दुराचारी शासन को धूल में मिलाया था।
'नन्द' कहे ऋषि दयानन्द ब्रह्मचारी ध्रुव,
खण्डन पाखण्ड कर वेद दरसाया था॥ १॥

मानवोद्धारक दयानन्द—

पाला ब्रह्मचर्य व्रत वीर हनुमान् ने था,
अपने आराध्यदेव राम के रिझाने को।
सुनते हैं पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था,
आततायी क्षत्रिय समाज के नसाने को।
पाला ब्रह्मचर्य भीष्म पितामह ने 'प्रकाश',
पूज्य पिता शान्तनु को सुखिया बनाने को।
किन्तु पाला ब्रह्मचर्य देव दयानन्द ने था,
कोटि-कोटि मानवों के संकट मिटाने को॥ २॥

गीत

ब्रह्मचर्य नष्ट कर डाला, क्यों हुआ देश मतवाला।
पवन, पुत्र हनुमान् बली ने कैसा बल दिखलाया था।
ब्रह्मचर्य के प्रताप से लंका को जाय जलाया था,
रावण दल में अंगद का नहीं पैर टला था टाला॥ १॥

'शक्ति' खाय उठ लक्ष्मण जी कैसा युद्ध मचाया था,
मेघनाद से शूरवीर को पल में मार गिराया था,
रामायण को पढ़कर देखो है इतिहास निराला॥ २॥

परशुराम के कुठार का भई जग मशहूर फसाना है,
बाल ब्रह्मचारी 'भीष्म' को जाने सभी जमाना है,
काँपे था जग इनके डर से पड़ न जाय कहीं पाला॥ ३॥
चालीस मन के पत्थर को रख छाती पर तुड़वाता था,
लोहे की जंजीरों के वह टुकड़े मित्र उड़ाता था,
राममूर्ति मोटर रोके था, है प्रत्यक्ष हवाला॥ ४॥

डेढ़ अरब के मुकाबले में इकला ही वीर दहाड़ा था,
जिसने आकर किया सामना पल में उसे पछाड़ा था,
जिसका नाम सभी दुनियाँ में 'दयानन्द ऋषि' आला॥ ५॥
ब्रह्मचर्य को धारो भाइयो यह तो दवा अनूठी है,
मुर्दे को जिन्दा करने की, यही संजीवन बूटी है,
''इन्द्र'' कहे तुम कमजोरी को दे दो देश निकाला॥ ६॥

जब तक एक भी ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द का शिष्य विद्यमान हैं
तब तक निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं
द्वीपदीपान्तर और देश-देशान्तर में आर्यसमाज और
महर्षि दयानन्द का बोलबाला होकर रहेगा॥ ७॥

जितने मेरे शरीर पर रोम हैं उतनी बार जन्म लूँ और
सब जन्मों में आजीवन ब्रह्मचारी रहकर
वैदिक धर्म का प्रचार करूँ तो भी
महर्षि दयानन्द के ऋण से उऋण नहीं हो सकता॥ ८॥

—स्वामी ओमानन्द सरस्वती
गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर (हरि०)

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति॥ १॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन्त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २॥
आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ ३॥
इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥ ४॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ ५॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ ६॥
ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥ ७॥
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत्केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥ १०॥
अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी॥ ११॥
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां
तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन्ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥ १४ ॥
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् ।
प्रजापतौ। तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ १८ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥ १९ ॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
पृथक्सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥

देवानामेतत्परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४ ॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

—o—

परिचय

आचार्य ब्र० श्री नन्दकिशोर विद्यावाचस्पति, एम०ए०, शोधार्थी मनोवृत्ति के स्वामी हैं । आपने दुर्लभ साहित्य खोजकर संगृहीत किया हुआ है, जो समय पर जिज्ञासु लेखकों, प्रकाशकों को आप उपलब्ध करवाते रहते हैं । गौरव ग्रन्थमाला इसी शोध का परिणाम है । एक-एक विषय पर आपने सामग्री एकत्रित कर पाठकों के हितार्थ प्रकाशित की है ।

आर्यसमाज के सप्तखण्डीय इतिहास के लिए श्री घूडमल आर्य साहित्य सम्मान द्वारा सम्मानित डॉ० सत्यकेतुजी विद्यालंकार को आपने बहुत-सी सामग्री उपलब्ध करवाई ।

ऋषि दयानन्द द्वारा प्रचारित व प्रसारित वेदोक्त विचारधारा के जन-जन तक पहुंचाने हेतु आपका अहर्निश चिन्तन चलता रहता है। आपने कई गुरुकुलों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और अनेक की सहायतार्थ प्रेरित करते रहते हैं । साहित्य प्रकाशन में भी आप सक्रिय हैं और आपका प्रयास है कि आर्यसमाज का साहित्य विधिवत् खण्डों में प्रकाशित हो, जिससे इसका स्वरूप व महत्त्व तथा उपयोगिता स्पष्ट हो सके।

नेपाल में आर्यसमाज के कार्य हेतु आपके प्रयास अनुकरणीय व श्लाघनीय हैं । हिन्दी के साथ नेपाली व मराठी भाषा के साहित्य प्रकाशन में आपका उल्लेखनीय योगदान है । बालकों, युवकों को आगे बढ़ाने व प्रोत्साहन देने में आप हमेशा तत्पर रहते हैं । सम्पूर्ण आर्यजगत् में अपनी अद्भुत क्षमताओं, लगन व कार्यशैली के कारण आप सम्मान पाते हैं ।

आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता, वैदिक धर्म के [illegible]चार-प्रसार एवं वैदिक साहित्य सेवा के उपलक्ष्य में आप कई पुरस्कारों एवं सम[illegible] से सम्मानित हो चुके हैं, जिनमें-१. श्री ब्रह्मचारी अखिलानन्द आर्य भिक्षु प[illegible]कार (आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार)। २. आर्य विभूषण पुरस्कार (ग[illegible]चन्द्र आर्य चैरिटेबल ट्रस्ट, नागपुर)। ३. दिल्ली संस्कृत अकादमी संस्कृत [illegible] (नई दिल्ली)। ४. चौधरी मित्रसेन स्मृति पुरस्कार ससम्मान (गुरुकुल [illegible]सा)। ५. परोपकारिणी सभा प्रशस्ति पत्र (अजमेर)। ६. पं० गुरुदत्त [illegible] निर्वाण शताब्दी समारोह (आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा)। ६. स्वर्गीय पं० ऋषि तिवारी स्मृति सम्मान (मानव सेवा प्रतिष्ठान, हालैण्ड)। ७. सत्यव्रत अग्निवेश पुरस्कार (विक्रम प्रतिष्ठान, अमेरिका इत्यादि)।